बच्चन और तेजी को सप्रेम

——चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

सूची

वक्तव्य

'कहानी' एक ओर अत्यन्त प्राचीन है तो दूसरी ओर अत्यन्त नवीन। जब से मानव ने भाषा द्वारा भाव-प्रकाशन करना शुरू किया, तभी से वह कहानी कहना भी सीख गया। साथ ही कहानी इतनी नवीन है कि नई कविता के समान उस के साथ 'नया' शब्द जोड़ना एकदम निरर्थक होगा। साहित्य के जिस अंग को आज 'कहानी' कहा जाता है, उसका विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ है। यही कारण है कि जहां साहित्य के अन्य सभी अंगों——कविता, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, आलोचना, महाकाव्य आदि——का अपना-अपना इतिहास और अलग-अलग प्रथाएँ हैं, वहां कहानी सच्चे अर्थों में विश्वजनीन है। जब तक वर्तमान कहानी का विकास हुआ, संसार सिकुड़ कर छोटा हो गया था। इस कारण संसार भर के देशों में कहानी नामक इस नए साहित्यिक माध्यम की टैकनीक में न तो अधिक भेद है और न विकास-क्रम का अन्तर ही।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कहानियों में विविधता नहीं हो सकती। कहानियों के बीसों प्रकार हैं और प्रत्येक कहानी-लेखक को इस बात की स्वाधीनता प्राप्त है कि वह चाहे जिस ढंग से अपनी कहानी प्रस्तुत करे। बल्कि प्रतिभाशाली लेखक तो कहानी के किसी नए प्रकार का आविर्भाव भी कर सकता है। कहानी के लिए न समय की कैद है और न स्थान की। एक क्षण से लेकर महाकाल तक पर और एक अणु से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तक पर कहानी लिखी जा सकती है। फिर भी कहानी नामक यह नया साहित्यिक माध्यम कितने ही ऐसे सूक्ष्म बन्धनों से जकड़ा

हुआ है कि अच्छी कहानी लिख सकना एक असाधारण कारीगरी (क्रैफ्ट्समैन-शिप) का काम बन गया है।

इस पर भी केवल कारीगरी के आधार पर कोई रचना अच्छी कहानी नहीं बन सकती। अगर लेखक के पास कहने को कुछ भी नहीं है, तो हज़ार कारीगरी दिखाकर भी वह अच्छी कहानी नहीं लिख सकता।

मेरी राय से घटनात्मक इकहरे कलापूर्ण चित्रण का नाम कहानी है। उपन्यास में और कहानी में वही अन्तर है, जो एक विशाल वृक्ष में तथा एक इकहरी लता में होता है।

वर्तमान कहानी के निम्नलिखित तीन आधारभूत तत्व हैं :

१ **केन्द्रीय भाव** जो कहानी का प्राण है। यह आवश्यक है कि एक कहानी में केवल एक ही केन्द्रीय भाव रहे, एक से अधिक नहीं। इसी केन्द्रीय भाव को मूर्त्त रूप देने के लिए कहानी लिखी जाती है और सम्पूर्ण कहानी में इस तरह का एक भी वाक्य सहन नहीं किया जा सकता, जो उक्त केन्द्रीय भाव के स्पष्टीकरण या चित्रण में सहायक न हो।

२ **कथानक** जो कहानी का शरीर है। कथानक के लिए स्थान, काल या पात्रों की कोई कैद नहीं है। पर यह आवश्यक है कि वह उक्त केन्द्रीय भाव की अभिव्यक्ति का निमित्त बने, उससे कुछ भी अधिक या कुछ भी कम नहीं। किसी तरह का अनावश्यक विस्तार कहानी को कमज़ोर बनाता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि कथानक केन्द्रीय भाव के प्रकाशन का एक साधन या माध्यम है, वही लक्ष्य नहीं है। कथानक द्वारा कहानी के केन्द्रीय भाव को मूर्त्त रूप दिया जाता है।

३ **कलापूर्ण गठन** जो कहानी का प्रसाधन है। आज के युग

में प्रसाधन का महत्व जीवन के सभी क्षेत्रों में बहुत अधिक बढ़ गया है। इस प्रसाधन के बिना कहानी भी कच्ची या अनघड़-सी बनी रहती है।

कहानी की टैकनीक के बारे में विशेष स्पष्टीकरण मेरे इस वक्तव्य का उद्देश्य नहीं है। पर बहुत संक्षेप से मैंने उक्त बातों का ज़िक्र इस कारण किया है कि कहानी के सम्बन्ध में अपनी धारणाओं की रूपरेखा यहां अंकित कर सकूं। इससे पाठकों को उनका मूल्यांकन करने में सहायता मिलेगी।

हिन्दी कहानी के विकास से सम्बद्ध एक विचारणीय प्रश्न की ओर मैं पाठकों का ध्यान खींचना चाहता हूँ। हिन्दी में कहानी का विकास प्रथम विश्व युद्ध के आस-पास हुआ। हिन्दी कविता के समान हिन्दी कहानी में किसी तरह की रूढ़ियां नहीं थीं, इससे हिन्दी कहानी का विकास असाधारण शीघ्रता से हुआ। इस सदी के दूसरे दशक (१९११ से १९२०) में दो-तीन अत्यन्त असाधारण प्रतिभाशाली कहानी लेखक हिन्दी को प्राप्त हुए, जिन में से एक तो संसार के मूर्धन्य कहानी-लेखकों में है : प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी। तीसरे दशक (१९२१ से १९३०) में हिन्दी कहानी को जो प्रतिभाएं प्राप्त हुईं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं: विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, शिवपूजन सहाय, राय कृष्णदास, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'। चौथे दशक (१९३१ से १९४०) का रिकार्ड और भी शानदार है। जैनेन्द्र-कुमार, वात्स्यायन 'अज्ञेय', यशपाल, भगवती चरण वर्मा, कमला चौधरी, विष्णु प्रभाकर, सत्यवती मल्लिक, उषादेवी मित्रा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', मन्मथनाथ गुप्त आदि यशस्वी लेखक इसी दशक में हिन्दी को प्राप्त हुए। और सच पूछा जाए तो चौथे दशक के भी पूर्व भाग में, अर्थात १९३६ तक।

पर उसके बाद के दोनों दशकों में न केवल बहुत कम नई प्रतिभाएं हिन्दी कहानी को प्राप्त हुई, अपितु प्रसिद्ध पुराने लेखकों में भी एक

गत्यवरोध-सा उत्पन्न हो गया। वर्तमान दशक (१९५१ से) में हिन्दी में कुछ नए कहानी लेखकों का प्रादुर्भाव अवश्य हुआ है, पर पिछला दशक (१९४१ से १९५०) तो इस दृष्टि से जैसे एकदम वीरान-सा रहा।

आज भी हिन्दी कहानी में इस सदी के चौथे दशक का-सा दम-खम और निखार नहीं है। यह समझना भूल होगी कि पुराने लेखकों की मौजूदगी के बोझ से नए लेखक पनप नही पा रहे हैं, जैसा कि कुछ लोगों का ख्याल है। कारण चाहे कुछ रहे हों, दूसरे विश्व युद्ध के प्रारम्भ से लेकर भारत की स्वतन्त्रता के दो-तीन साल बाद तक हिन्दी कहानी में एक स्पष्ट गत्यवरोध आया था, इससे इनकार नही किया जा सकता।

हमारे लेखक यदि यह समझने का प्रयत्न करें कि कहानी क्या है और हमारे पाठक अच्छी और बुरी कहानी में तमीज़ कर सकें, तो पिछले गत्यवरोध के चाहे कुछ भी कारण रहे हों, हिन्दी कहानी अच्छी रफ़्तार से प्रगति करने लगेगी।

जहाँ तक मेरे इस संग्रह की कहानियों का सम्बन्ध है, उन्हें किसी आदर्श या चैलेंज के रूप में मै प्रस्तुत नहीं कर रहा हूँ। उनके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि मेरे जीवन के वे क्षण अत्यन्त सफल, सन्तोषप्रद और आह्लादमय थे, जिनमें मैंने ये कहानियां लिखीं।

४, पाटौदी हाउस
नई दिल्ली

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
४ दिसम्बर १९५६

तीन दिन

पहला दिन

आज सुबह से पहले मुझे कहाँ मालूम था कि स्वर्ग मुझसे केवल कुछ ही घण्टों की राह पर है। पहले भी मैं कितनी ही बार काश्मीर आया हूँ, पर मुझे कभी ख्याल भी न था कि श्रीनगर से केवल २५ मील की दूरी पर स्वर्ग का एक कोना विद्यमान है। मेरे मेजबान का यह विशाल उद्यान और कुछ ही दूरी पर मानसबल की यह अत्यन्त सुन्दर झील। वसन्त अपने यौवन पर है और यह विशाल उद्यान हजारों-लाखों सुकोमल, सुरभित और नयनाभिराम फूलों से जैसा लदा-सा पड़ा है। बाग के बाहर सब ओर ऊँचे-नीचे टीले हैं, जिन पर मूँगे के रंग की नई घास फूट रही है। झील के एक तरफ़ ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं, जिनकी चोटियाँ अभी तक श्वेत बरफ से ढँकी पड़ी हैं। झील के स्वच्छ जल में एक ओर इन महाश्वेता पहाड़ियों का प्रतिबिम्ब झलकता रहता है और दूसरी तरफ़ हजारों-लाखों फूलों से लदे एक ऐसे जंगल का प्रतिबिम्ब जो क्रमशः ऊँचा होता चला गया है।

कितना अन्तर है मेरे शहर के जीवन में और यहाँ के जीवन में। वहाँ हर वक्त जबरदस्ती मुसकराना, दिन भर में बीसों नए आदमियों से मिलना और दिनरात सरकस के बाजीगर के समान सतर्क रहना, जबकि वह तार पर साइकल चला रहा होता है और सरकस के तमाम तमाशबीनों की निगाह उसी की ओर लगी होती है। और यहाँ आकर मनुष्य जैसे प्रकृति माँ की गोद में आ पहुँचता है।

कल रात जब मैं यहाँ पहुँचा था तो फूलों की सुगन्ध से भरी हुई शीतल

वायु ने मेरा स्वागत किया था। सुबह जब मैं उठ कर बाहर आया तो जैसे मेरी आँखों के सामने से एक परदा उठ गया। मैंने पाया कि चारों ओर असीम सौन्दर्य बिखरा-सा पड़ा है। मैं चुपचाप बिना किसी से कुछ भी पूछे, एक ओर अकेला निकल गया था। मेरे मेज़बान बहुत समझदार आदमी हैं। मेरे आराम की पूरी व्यवस्था तो उन्होंने कर दी, पर वह मेरे सामने नहीं आए। घास से मढ़े ऊँचे-नीचे मैदानों पर मैं अकेला आगे बढ़ता चला गया। चारों ओर सन्नाटा था। केवल सुदूर आस्मान में खूब ऊँचाई पर उड़ रही अबाबीलों की पंक्तियाँ इस सन्नाटे को कभी-कभी भंग करती थीं। परन्तु उनका संगीतमय कलरव कितना भला प्रतीत होता था। सौन्दर्य से भरी इस नई दुनिया में मैं अकेला आगे बढ़ता चला गया। यह अपरिचित प्रदेश जैसे किसी चिर-आत्मीय के समान मुझे अपनी ओर पुकार रहा था। आज जो कुछ भी मैं देख रहा था, वह सब मेरे लिए नया था। परन्तु मेरी आत्मा जैसे मुखरित होकर कह रही थी कि बरफ़ से लदी इन पहाड़ी चोटियों को, फूलों से लदे इन जंगलों को और आस-पास का सभी कुछ अपनी विशाल छाती में प्रतिबिम्बित करती हुई इस झील को मैं खूब अच्छी तरह पहचानता हूँ; एक युग से पहचानता हूँ।

न जाने कब तक घूमफिर कर जब मैं अपने मेज़बान के बगीचे में वापस आया, तो सूरज आस्मान के बीच तक आ पहुँचा था। मैंने पाया कि मेरे मेज़बान बागवानी के कुछ औज़ार लिए एक अत्यन्त आकर्षक वृक्ष की परिचर्या में संलग्न हैं। एक अत्यन्त सरल मुसकराहट के साथ मेरे मेज़बान ने मुझे अपने पास बुलाया और मेरा हाल-चाल पूछा। साथ के उस वृक्ष को जब मैंने ज़रा गौर से देखा तो मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा। इस वृक्ष का तना तो एक ही था, परन्तु ऊपर जाकर वह वृक्ष तीन भागों में विभक्त हो गया था और इन तीनों पर विभिन्न प्रकार के फूल लदे थे। मेरे मेज़बान ने अपने इस विशेष प्रेमपात्र वृक्ष से मुझे परिचित किया: "यह खुमानी का पेड़ था, पर अब इस पर सेव, आड़ू और खुमानी तीनों लगते हैं।"

मैंने कहा, "आज क्या आप इस खुशक़िस्मत पेड़ पर किसी चौथे फल की कलम लगा रहे हैं ?"

मेरे मेज़बान ने कहा--"मेरे यहाँ चार फल देने वाला भी एक वृक्ष है, परन्तु आजकल तो कलम लगाने का मौसम ही नहीं है।"

मैंने पूछा--"तो कलम लगाने का भी मौसम होता है ?"

मेरे मेज़बान ने कहा--"कलम लगाने का न सिर्फ़ मौसम होता है, बल्कि मैं तो कलम लगाते हुए वृक्ष की मूड का भी ध्यान रखता हूँ।"

मैंने कहा--"वृक्षों की मूड !"

उन्होंने कहा--"वृक्ष तो खैर, वृक्ष ही हैं और उनमे अपार सहनशक्ति है, मगर मेरा तो ख्याल है कि अगर मूड का ठीक-ठीक ख्याल रक्खा जाए तो इन्सान में भी कलम लगाई जा सकती है।"

मैंने दोहराया--"इन्सान में भी कलम !"

मेरे मेज़बान ने कहा--"जी हाँ, मानवीय मानस-क्षेत्र में भी यदि मूड और परिस्थितियों का ख्याल रक्खा जाए, तो कलम लगाई जा सकती है।"

यह बात आगे नहीं बढ़ी और हम लोग भोजन के कमरे की ओर बढ़ चले।

दोपहर के भोजन के बाद मैं कुछ देर सोया और चाय के बाद पुनः सैर के लिए निकल गया। जब मैं सैर से वापस आया तो रात हो आई थी। रात की नीरवता में मैंने पाया कि मेरे मेज़बान की वही कार, जिस पर कल रात मैं इसी समय यहाँ आया था, आज पुनः पोर्च में खड़ी है और उस पर से एक और साहब उतर रहे हैं।

मेरे मेज़बान कितने मज़ेदार आदमी हैं। उन्हे न जाने कहाँ से मालूम हो जाता है कि उन के किस मित्र को कब उनकी आवश्यकता है। उन्होंने नए मेहमान से मेरा परिचय करवाया--"तुमने मेरे इन मित्र का नाम तो सुना ही होगा। यह हैं डा० आनन्दकुमार। कितनी ही पुस्तकों के लेखक।"

आनन्दकुमार की कुछ पुस्तकें मैंने पढ़ी थीं और यह देख कर मुझे

आश्चर्य हुआ कि वह अभी एक नवयुवक से प्रतीत होते हैं। उससे भी अधिक आश्चर्य मुझे यह देख कर हुआ कि डा० आनन्दकुमार बहुत ही व्यथित, गम्भीर और खोए-खोए-से दिखाई दे रहे थे। जैसे वह अपना सभी कुछ गँवा कर यहाँ आए हों।

वातावरण में स्पष्टतः एक उदासी-सी व्याप्त हो गई। मेरे मेजबान भी अधिक नहीं बोले। डाक्टर आनन्दकुमार तो जैसे गूँगे ही थे। वह इस समय किसी अपरिचित से परिचित होने की मूड में नहीं थे, इससे मैं चुपचाप अपने कमरे में चला गया। रात का खाना भी मैंने अपने कमरे में ही मंगा लिया। रात के सन्नाटे में मैंने सुना, मेरे मेज़बान इसराज पर बहुत ही करुण रागिनियाँ छेड़ रहे हैं, जैसे वह जानबूझ कर डा० आनन्द कुमार को और भी अधिक रुलाने का प्रयत्न कर रहे हों। आनन्दकुमार का हाल तो वही जानें, चाँदनी से ढके स्वर्ग के इस कोने में ये करुण रागिनियाँ सुनकर मेरी आँखों के कोर जैसे आप-से-आप भीग आए।

दूसरा दिन

सुबह उठा तो मैंने पाया कि मेरा मन और शरीर दोनों बहुत स्वस्थ हो आए हैं। ऐसा जान पड़ा, जैसे एक युग से मैं इसी सौन्दर्य-भरी दुनिया में रहता आया हूँ। मैं अकेला चुस्ती के साथ मानसबल की ओर बढ़ चला। झील के किनारे पर मैंने पाया कि एक छोटा-सा शिकारा[1] वहाँ बँधा हुआ है। कालेज के दिनों में मैं अपनी किश्तियाँ खेनेवाली टीम में रहा था। वह प्रवृत्ति मुझ में जाग गई और यह शिकारा लेकर मैं झील के भीतर की ओर बढ़ चला। झील में कुछ ही दूरी पर कमलिनियों का एक बड़ा खेत-सा था। सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में खिली हुई ये पीतवर्ण कमलिनियाँ कोमलता और सौन्दर्य का साकार रूप जान पड़ती थीं। मैंने इस खेत का एक चक्कर लगाया और बीसों फूल अपने शिकारे में भर लिए। उसके बाद मैंने शिकारे में अपने कपड़े उतार दिए और झील के स्वच्छ जल में जी भर कर

[1] एक बहुत छोटी काश्मीरी किश्ती।

तैरा। बाहर वातावरण में अभी तक काफ़ी सरदी थी, परन्तु झील का पानी बहुत ठंडा नहीं था।

घर वापस आया तो आज कल से भी अधिक देर हो गई थी। मेरे मेज़बान डाक्टर आनन्दकुमार के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। आनन्द-कुमार भी इस समय उतने उदास प्रतीत नहीं हो रहे थे।

आज अपने मेज़बान से डाक्टर आनन्दकुमार की उदासी का कारण ज्ञात हुआ। कारण वैसा ही था, जिसकी मैंने कल्पना की थी। करीब ५ साल हुए अपने ही कालेज में विज्ञान की एक छात्रा कुमारी जैनट से आनन्द कुमार का परिचय हुआ था। यही परिचय बढ़ते-बढ़ते पारस्परिक आकर्षण की सीमा में आ पहुँचा। महाकाल ने जैसे चुपचाप उन दोनों के हृदयों को एक-दूसरे के साथ सी दिया। दोनों एक दूसरे के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति का स्रोत बन गए।

पिछले साल कुमारी जेनट के निमन्त्रण पर डाक्टर आनन्दकुमार उसके घर पर भी गए थे। जेनट के माता-पिता उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए थे। जेनट और आनन्दकुमार को इस बात का विश्वास हो गया कि उनके माता-पिता को उनके विवाह के सम्बन्ध में कोई एतराज़ नहीं होगा। दोनों ने एक-दूसरे से कहा कि वे एक-दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। दोनों ने एक दूसरे से न जाने कितनी ही किस्म की प्रतिज्ञाएँ कीं। दोनों का संसार जैसे सिमट कर एक-दूसरे तक ही सीमित हो गया।

कुछ ही दिन हुए कि आनन्दकुमार ने अपने सब मित्रों को इस बात की सूचना दे दी कि इसी वसन्त में वह कुमारी जेनेट से विवाह कर रहे हैं। मेरे मेजबान के पास भी उनका यह निमन्त्रण आया था।

कि एकाएक नीले आस्मान में से वज्र गिरा। जेनेट के पिता का पत्र उन्हें मिला कि उनका परिवार किसी गैर ईसाई के साथ अपनी जेनेट का विवाह करने को तैयार नहीं है। इतना ही नहीं, अपने बड़े लड़के को भेज कर जेनेट को उन्होंने अपने पास बुला लिया। आनन्दकुमार की विह्वलता का पारावार न रहा। उन्होंने कितनी ही दलीलें देकर जेनेट

के पिता से यह अनुरोध किया कि उन्हें इस सम्बन्ध में एतराज़ नहीं करना चाहिए। विशेषतः उस दशा में जब कि जेनेट और वह कितने ही बरसों से एक-दूसरे को प्यार करते हैं। एक पत्र उन्होंने जेनेट को भी लिखा।

परन्तु जेनेट के पिता अपने आग्रह पर अड़े रहे। उन्होंने लिखा कि आनन्दकुमार को भी ईसाई हो जाना चाहिए। तभी यह विवाह हो सकता है। बेचारे आनन्दकुमार जो कुछ कर सकते थे, वह सब उन्होंने किया, मगर जेनेट के पिता टस से मस न हुए। आनन्दकुमार को ईसाईयत से कोई वैर नहीं था, पर विवाह के लिए ईसाई हो जाने को वह तैयार नहीं थे। यह उन्हें मनुष्यत्व का अपमान प्रतीत होता था।

पिछले सप्ताह आनन्दकुमार को कुमारी जेनेट का पत्र मिला, जिसमें उसने स्पष्टतः लिख दिया था कि वह अपने माँ-बाप और अपने परिवार को नाराज़ नहीं कर सकती। वह यह भी नहीं चाहती कि उसकी खातिर आनन्दकुमार ईसाई हो जाएँ। इसलिए अच्छा यही रहेगा कि दोनों एक-दूसरे को सदा के लिए भूल जाएँ।

भावुक आनन्दकुमार के लिए यह बहुत बड़ी चोट थी। मेरे मेजबान से वह कभी कुछ भी छिपा नहीं रखते थे। उन्हें सभी कुछ ज्ञात था। इससे उन्होंने तार देकर आनन्दकुमार को अपने पास बुला लिया था।

और मैं तो इन बातों में एकदम कोरा हूँ। लाख प्रयत्न करने पर भी सान्त्वना का एक शब्द तक भी जैसे मेरे गले से बाहर नहीं निकल पाता। आज साँझ हम तीनों जने एक साथ सैर पर गए। घण्टों तक घूमे-फिरे, पर जो कुछ हो बीता है, उसकी चर्चा किसी ने नहीं की। फिर भी मालूम होता था कि प्रकृति माँ की इस उन्मुक्त गोद में आनन्दकुमार के दुखी हृदय को यथेष्ट सान्त्वना प्राप्त हो रही है।

सैर से वापस लौटे तो आज भी रात हो गई थी। मालूम होता है, जैसे मेरी आँखों को इस वक्त कोठी के पोर्च में अपने मेज़बान की कार को मौजूद देखने की आदत पड़ गई है। ओह, कल और परसों के समान ठीक उसी वक्त और ठीक उसी जगह मेरे मेजबान की कार खड़ी है और आज भी

उस पर से किसी का सूटकेस और होल्डआल उतारा जा रहा है।

मुझे तो क्या, मेरे मेजबान के भी विस्मय का पारावार न रहा, जब कार में से एक नारी मूर्ति उतर कर उनकी ओर बढ़ी। क्षण भर आश्चर्य से देखते रह कर जैसे चीखती आवाज़ में उन्होंने पुकारा--"इन्दिरा! तुम यहाँ कहां?"

इन्दिरा आगे बढ़कर चुपचाप मेरे मेज़बान के पास पहुँची। मेरे मेज़बान ने उसे अपने आलिंगन मे लेकर उद्विग्न स्वर में कहा--"तुम अमेरिका से कब लौटीं इन्दिरा? अजित कहाँ है? तुमने तो अपने आने की सूचना तक भी मुझे नहीं दी बेटी? बात क्या हुई?"

मेरे मेज़बान के कन्धे पर अपना सिर डाल कर इन्दिरा धीरे से बोली--"चचा जी!" और उसके बाद एकाएक उसकी रुलाई फूट पड़ी।

चाँदनी में मैंने देखा कि उस सुन्दरी की आँखों से टपाटप आँसू टपक रहे हैं। मेरे मेज़बान ने पूछा--"अजित कहाँ है?" उनका स्वर एकाएक बहुत विचलित हो उठा था।

इन्दिरा ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया। शायद हम दोनों के सामने वह कुछ कहने से झिझकती हो, यह सोच कर आनन्दकुमार और मैं चुपचाप अपने-अपने कमरों की ओर चले गए।

वातावरण एकाएक बहुत विषादमय हो उठा। रात का वह गहरा सन्नाटा, वह नीरव चाँदनी और फूलों की गन्ध से भारी होकर बहने वाली ठंडी हवा, यह सब जैसे विषाद की उस अनुभूति को और भी गहरा तथा और भी व्यापक रूप दे रही हों।

तीसरा दिन

मेरे मेज़बान मेरे बचपन के दोस्त हैं। अपने इस मेज़बान को मैं खूब अच्छी तरह पहचानता हूँ। बगवानी के महापण्डित होने के साथ ही साथ वह बहुत ही ठहरी हुई और सौम्य प्रकृति के विचारक हैं। मैं सदा से उन्हें सम-सत्वस्थ रूप का उदाहरण मानता रहा हूँ, जिसे कभी किसी ने

विचलित होते नहीं देखा। कल रात उन्हें भी विचलित देखकर स्वभावतः मुझे बहुत पीड़ा हुई थी।

आज मालूम हो गया कि इन्दिरा की कहानी जितनी विषादमयी है, उतनी ही पुरुषमात्र के लिए वह लज्जाजनक भी है।

संक्षेप मे किस्सा यह था कि भोली-भाली इन्दिरा पिछले ३ सालों में जिस युवक पर अगाध विश्वास करती रही, वह एक बहुत बड़ा धोखेबाज़ निकला। गत वर्ष पढ़ाई के बहाने मेरे मेज़बान से काफ़ी रुपया लेकर अजित अमेरिका चला गया था। ३ महीने हुए उसने लिखा था कि उसके एक अमेरिकन मित्र ब्राज़ील में ५० हज़ार रुपयों मे एक बहुत बड़ा फ़ार्म उसे दिला सकते है, इसलिए इन्दिरा को चाहिए कि अपने चचा से धन की व्यवस्था कर अमेरिका चली आए। अजित को मालूम था कि इन्दिरा के लिए उसके चचा ने पचास हज़ार रुपया अलग से रक्खा हुआ है। कितने अरमानों को लेकर इन्दिरा आज से सिर्फ ६ सप्ताह पूर्व अमेरिका गई थी और किस भग्न हृदय से आज वह वापस लौटी है। परदेस में सब कुछ गँवा कर भोली-भाली इन्दिरा यह जान पाई कि अजित इन्दिरा को नहीं, उसके धन को चाहता था।

किसी को सूचना दिए बिना हवाई जहाज़ से आज साँझ जब इन्दिरा श्रीनगर पहुँची, तो अपने चचा के पास आने के लिए टैक्सी का प्रबन्ध कर ही रही थी कि उसके चचा के ड्राइवर की निगाह उस पर पड़ गई, जो कुछ ज़रूरी चीज़े लेने श्रीनगर आया था।

इन्दिरा की आप-बीती जानकर मेरा मन खिन्नता और उदासी से भर आया। ओह, मनुष्य कितना बड़ा दानव बन सकता है। इन्दिरा के लिए मेरे मन में गहरी समवेदना थी, परन्तु उससे भी अधिक वेदना मुझे अपने मेज़बान के उदास चेहरे को देखकर हो रही थी।

प्रातःकाल मैंने उनसे अनुरोध किया कि वह मेरे साथ सैर पर चलें। वह चुपचाप मेरे साथ चल दिए। यों न मुझे अधिक बोलने की आदत है और न मेरे मेज़बान को। मगर आज प्रातः की सैर के तीन घण्टों में न जाने मैंने

कितनी बकवास की होगी। मैने दुनिया भर की मज़ाक उड़ाई, राजधानी के अपने दोस्तों की मज़ाक उड़ाई और सब से बढ़ कर अपनी मज़ाक उड़ाई। संसार की कुछ जातियों के बारे में बेवकूफी के जो किस्से मशहूर है, वे सब नवीनतम किस्से मैने अपने बारे मे उन्हे सुनाए। मगर मैं जानता था कि मेरी कोई चाल इसलिए कारगर नहीं हो रही है कि मेरे मेजबान की अन्तर्व्यथा की थाह नहीं है। मेरी बातें सुनकर वह मुसकराते तो थे, मगर उस मुस्कराहट में उनकी वेदना जैसे और भी अधिक घनीभूत हो उठती थी। इतनी बड़ी पराजय शायद ही कभी और मेरे पल्ले पड़ी हो। इस नई उलझन के सम्मुख मै आनन्दकुमार को एकदम ही भूल गया था।

हम दोनों सैर से लौटे तो दोपहर के दो बजने वाले थे। मेरे व्यर्थ के प्रयास में हमारी सैर न जाने कितनी लम्बी हो गई थी।

हम दोनों सीधा खाने के कमरे मे पहुँचे। भोजनागार का दरवाज़ा खोलने से पहले जब बैरे ने उसे खटखटाया, तो हमें स्वभावतः आश्चर्य हुआ। परन्तु कमरे के भीतर जाते ही हमने जो कुछ देखा, इससे हम दोनों के आश्चर्य का परावार नहीं रहा। अपने जीवन में इतना आनन्ददायक आश्चर्य शायद ही और कभी मुझे हुआ हो।

मेरे मेजबान और मैंने देखा कि इन्दिरा और आनन्दकुमार खाने की मेज़ के निकट पास-पास बैठे है। उनके चेहरों पर दुख या विषाद की छाया तक भी नहीं है और वे इतने तन्मय होकर आपस में बातें कर रहे हैं कि न केवल उन्होंने दरवाज़े पर की गई खटखटाहट नहीं सुनी, अपितु हमारे कमरे के भीतर चले आने तक का भी बोध उन्हें नहीं हुआ। बैरे ने बताया कि वे दोनों प्रातराश के समय से यहाँ बैठे हैं। पहले कुछ समय तक वे दोनों बड़ी मेज़ के दो किनारों पर चुपचाप बैठे प्रातराश लेते रहे। प्रातराश के बाद बैरा भीतर तो नहीं गया, पर बाहर ही से उस ने उन दोनों को सुबक-सुबक कर रोते हुए भी सुना था, उसके बाद दोनों एक दूसरे को जैसे सान्त्वना देते रहे, फिर चुप्पी छा गई और अब काफ़ी देर से वे दोनों एक दूसरे के निकट बैठ कर आपस में बातें करने में मग्न हैं।

इससे भी बढ़कर प्रसन्नता मुझे यह देखकर हुई कि मेरे मेजबान के दिव्य चेहरे पर से आश्चर्य का भाव क्षण भर मे लुप्त हो गया और उस पर एक आनन्दपूर्ण स्वर्गीय मुस्कराहट छा गई। देवताओं के समान निश्छल मेरे मेजबान की कृषि-पाण्डित्यपूर्ण वाणी से केवल इतना ही निकला--"ओह, इन्सान में भी जैसे आप-से-आप कलम लग गई!"

मैं समझ गया। जैसे वह कहना चाह रहे हों--"देखा तुमने ? समान दुख से दुखी दो मानव हृदयों में माँ प्रकृति किस आसानी से कलम लगा देती है? ताकि माँ प्रकृति की सृष्टि मे निरन्तरता बनी रहे, ताकि उनकी सृष्टि में से दुःख और पीड़ा छंट जाए और आह्लाद की वृद्धि हो !"

मास्टर साहब

न-जाने क्यों बूढ़े मास्टर रामरतन को कुछ अजीब तरह की थकान-सी अनुभव हुई और सन्ध्या-प्रार्थना समाप्त कर वे खेतों के बीचों-बीच बने उस छोटे-से चबूतरे पर बिछी एक चटाई पर ही लेट रहे। सन् १९४७ के अगस्त मास की एक चाँदनी रात अभी-अभी शुरू हुई थी। मास्टर साहब ने जब सन्ध्या-प्रार्थना शुरू की थी, तो आकाश पर छितराए बादलों में अभी गहरी लाली विद्यमान थी; परन्तु सन्ध्या समाप्त कर जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो सब तरफ़ चाँदनी व्याप्त हो चुकी थी और आकाश के एक भाग में छाए हल्के-हल्के बादल रुई के बंडलों की तरह सफ़ेद दिखाई देने लगे थे। पिछले दिनों बहुत गर्मी रही थी—मौसम की भी, दिमाग़ की भी। मास्टर साहब का यह कस्बा जैसे दुनिया के एक किनारे पर है। नजदीक-से-नजदीक का रेलवे स्टेशन भी वहाँ से ३० मील की दूरी पर है। फिर भी पिछले कितने ही दिनों से कितनी ही अमंगलपूर्ण खबरें दिन-रात सुनने में आ रही है। सुना जाता है, मुसलमान हिन्दुओं और सिक्खों के खून के प्यासे बन गए हैं। दुनिया तबाह हो रही है। घर-बार लूटे जा रहे हैं। सब तरफ मार-काट जारी है। मास्टर साहब के गाँव में अभी तक अमन-चैन है, फिर भी वहाँ के वातावरण में एक गहरा त्रास स्पष्ट रूप से छाया हुआ है।

चाँदनी रात की ठंडी हवा और चारों तरफ़ गहरा सन्नाटा। मास्टर साहब को जैसे राहत-सी मिली। थके हुए दिमाग़ का बोझ उतर-सा गया : ऊँह, ये सब झूठी अफवाहें है। कभी ऐसा भी हो सकता है! भला,

जब मैंने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा, तो किसी को कुत्ते ने काटा है कि वह मेरे खून तक का प्यासा बन जाए! अपनी ज़िन्दगी के ६५ बरस मैंने यहाँ बिताए हैं। मेरे शागिर्दों की संख्या हज़ारों मे है। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी को मैंने एक समान दिलचस्पी से पढ़ाया है। कोई एकाएक मेरा दुश्मन क्यों बन जाएगा? मगर यह पाकिस्तान! मास्टर साहब की दिमाग़ी राहत को जैसे एकाएक ठोकर लग गई! हूं, यह पाकिस्तान तो अब सर पर ही आने वाला है! मास्टर साहब के शरीर-भर मे एक कँपकँपी-सी छूट गई।

माँ प्रकृति ने जैसे अपने इस बूढ़े पुत्र को एक प्यार-भरी थपकी दी। हवा की ठंडक और भी बढ़ गई और चाँदनी का उजलापन और भी चमक आया। मास्टर साहब को सहसा अनुभव हुआ, यह तो वही दुनिया है, जिसे देखने का अभ्यास उन्हें बचपन से है। वही खेत है, जिन्हें उनके बाप-दादा उनके लिए छोड़ गए हैं। वही आसमान है, वही धरती है और वही सदैव ताज़ी बनकर बहने वाली हवा है। आख़िर पाकिस्तान इन सब को तो नहीं बदल डालेगा। ये सब तो उसी तरह कायम रहेंगे। आख़िर पाकिस्तान मे भी इन्सान की मिल्कीयत रहेगी, काम धन्धे रहेंगे, ज़बान रहेगी, लिखना-पढ़ना रहेगा। फिर मेरे जैसा फ़ारसीदाँ पाकिस्तान वालों को क्योंकर नागवार गुज़रेगा? पाकिस्तान बनेगा, तो यह सब-कुछ बदल थोड़े ही जाएगा। आख़िर कोई बाहर के लोग तो आकर पाकिस्तान को नहीं बसायेंगे। पाकिस्तान एक दिन बनना ही था। चलो, वह हमारी ज़िन्दगी में ही बन गया।

रात का सन्नाटा और भी गहरा हो गया और अपनी इस छोटी-सी ज़मींदारी के इस अत्यन्त सुरक्षित भाग पर लेटे-लेटे मास्टर साहब को नींद आ गई। प्रभात की लाली आसमान पर दिखाई देने लगी ही थी कि मास्टर साहब की नींद टूट गई। सहसा उन्होंने पाया कि वातावरण अभी तक एकदम नीरव है। यहाँ तक कि चिड़ियों की चहचहाहट भी सुनाई नहीं देती। मास्टर साहब उठ खड़े हुए और तेज़ी के साथ गाँव की ओर

चल पड़े।

एक खास तरह की मनहूसियत जैसे उन्हें चारों ओर फैली हुई साफ़ दिखाई दे रही थी। राह में कितने ही मुसलमान किसानों के कच्चे कोठे हैं। उन कोठों के आसपास कितने ही बच्चों और औरतों को उन्होंने देखा। उनमें से अधिकांश से वे परिचित थे, परन्तु आज सभी उन्हे कुछ बदले हुए-से प्रतीत हो रहे थे। एक गहरी चुप्पी जैसे पुकार-पुकार उन्हें चेतावनी दे रही थी कि महाकाल की वेला सिर पर है। राह के किसानों के चेहरे जरूर गम्भीर थे, परन्तु मास्टर साहब से किसी ने कुछ भी नहीं कहा। वे तेज़ी से अपने गाँव की ओर बढ़ते गए।

यह दूर पर क्या दिखाई दे रहा है? मास्टर रामरतन सहसा चौंक पड़े। जिस तरफ़ उनका गाँव है, उधर ही सुदूर क्षितिज पर बहुत बड़े पैमाने पर यह काला-काला क्या दिखाई दे रहा है! यह बादल हर्गिज़ नहीं हैं! क्योंकि बादल ज़मीन से नहीं निकला करते! मास्टर साहब की चाल और भी तेज़ हो गई। अब उन्हें सुदूर क्षितिज पर लाली भी दिखाई देने लगी। सुबह-सुबह पश्चिम में दिखाई देने वाली यह लाली स्पष्टतः किसी बहुत बड़े अमंगल की सूचक थी। बूढ़ा मास्टर अपने परमात्मा से प्रार्थना करने लगा: और चाहे जो कुछ हो, वह अग्निकांड उसके गाँव में न हुआ हो। मगर यह तो स्पष्ट ही है कि उनका गाँव जल रहा है। बूढ़े मास्टर ने अपनी प्रार्थना की मांग और भी कम कर दी: चाहे उनका सारा गाँव जलकर भस्म हो जाए, उनके गाँव के सभी निवासी सही-सलामत बच जाएँ।

मास्टर साहब अब दौड़ने लगे। बहुत शीघ्र वे पसीना-पसीना हो गए, पर उनकी दौड़ जारी रही। कुछ दूर पहुँचकर एक अत्यन्त त्रासदायक महा-नाद-सा भी उन्हें सुनाई देने लगा, जैसे सैकड़ों नर-नारी एक साथ हाहाकार कर रहे हों।

बूढ़े मास्टर ने परमात्मा से अपनी प्रार्थना की माँग और भी कम कर दी: चाहे कितने ही लोग कत्ल भी क्यों न हो जाएँ, उनके गाँव की किसी

लड़की का अपमान न होने पाए।

और तभी सहसा चिन्ता के एक बड़े तूफान ने उनके हृदय को एक सिरे से दूसरे सिरे तक झकझोर कर रख दिया। ओह, उनके परिवार की सब स्त्रियाँ और बच्चे गाँव मे ही थे। और उनकी लाड़ली पोती निर्मला, जिसकी पन्द्रहवीं वर्षगांठ अभी ५ ही दिन हुए बीती है!

मास्टर साहब के हृदय की सम्पूर्ण सदभिलाषाएँ आप-से-आप अपनी लाड़ली पोती निम्मो के चारों ओर केन्द्रित हो गई। ओ मेरे परमात्मा, ओ मेरे देवता, यह तेरी अपनी लज्जा का सवाल है! मेरी निम्मो को तू अपने पास भले ही बुला ले, उसकी बेइज़्ज़ती मत होने देना!

पूरब दिशा मे अग्नि का पुंज सूरज निकल आया। मास्टर साहब अब अपने गाँव के काफ़ी नजदीक आ पहुँचे थे। अब वह अकेले भी नहीं थे। उनके गाँव के कितने ही हिन्दू और सिख खेतों मे छिपे या गाँव की ओर से भाग कर आते हुए उन्हे दिखाई दिए। मास्टर साहब पसीने से तर-ब-तर हो गए थे। राह की धूल उस पसीने से लगकर वहीं द्रवीभूत होने लगी थी। इस बहती मिट्टी से उनका मुँह, कपड़े और बाल बुरी तरह भर गए थे। फिर भी वे जिस किसी तरह से दौड़ते चले गए और अपने गाँव की सीमा में आ पहुँचे।

मास्टर साहब ने आवाज दी--"नत्थूसिह, मेरे घर का क्या हाल है?"

नत्थूसिह उनका पड़ोसी था। वह इतना उदास दिखाई दे रहा था, जैसे उसकी निर्जीव देह-मात्र चल-फिर रही हो। नत्थूसिह ने मुँह से कुछ नहीं कहा, सिर्फ़ इस तरह सिर हिला दिया, जिससे उसकी असमर्थता प्रकट होती थी। मास्टर साहब ने कितने ही लोगों को पुकारा, पर जवाब कहीं से नहीं मिला। कुछ ही क्षणों के बाद मास्टर साहब अपने मोहल्ले के सामने विद्यमान थे। राह-भर में कितनी ही लाशों को लाँघकर मास्टर साहब इस जगह तक पहुँच पाए थे।

मास्टर साहब का मोहल्ला पक्के मकानों का था। इससे आग वहाँ बहुत फैलने नहीं पाई थी। किनारे के कुछ मकान जरूर जल गए थे

और अब भी उनमे से गहरा नीला काला-धुआँ उठ रहा था। पर मास्टर साहब का अपना मकान जरा भी नहीं जलने पाया था और न अब उधर आग के बढ़ने का खतरा ही था। मास्टर साहब लपककर घर के सामने पहुँचे। गली-भर में एक भी आदमी उन्हे दिखाई नहीं दिया। सब तरफ़ सन्नाटा था–मौत का गहरा सन्नाटा। कुत्ता, बिल्ली या कोई भी ज़िन्दा प्राणी तक गली में नहीं था। आसमान में परिन्दे तक नहीं थे। सिर्फ़ दूर पर जल रहे मकानों की ज्वालाएँ एक भयोत्पादक आवाज़ उत्पन्न कर रही थीं।

क्षण-भर को मास्टर साहब ठिठक गए। जो कुछ हो बीता है, उसका आभास उन्हे मिल गया था। फिर भी उम्मीद यह तो थी कि घर के लोग शायद बच गए हों। अगर यही उम्मीद कायम रह सकती तो! क्षण-भर केबाद मास्टर साहब ने सहमे-सहमे-से आवाज दी--"निम्मो!"

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब ने पुकारा--"निम्मो की दादी! बेटा सत्ती! बेटा प्रकाश! बेटी दमयन्ती!"

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब धीरे-धीरे घर के भीतर प्रविष्ट हुए। घर के सब दरवाज़े चौपट खुले पड़े थे। अन्दर जैसे कोई झाड़ू-सा दे गया था। कहीं कोई चीज नहीं थी। गुण्डे सभी कुछ उठा ले गए थे। भीतर जाते ही एक तरफ़ बैठक है। सब खाली। उसके बाद एक खुला सहन है। इस सहन के दाहिनी ओर दो कमरे है, जो सर्दियों में परिवार के सोने के काम आते हैं। दोनों कमरे एकदम खाली पड़े है। सहन की बाईं ओर एक दरवाजा है, उसमें होकर एक और छोटे सहन में जाना होता है, जहाँ घर के जानवर बाँधे जाते है--एक बरामदा, एक कमरा जानवरों के लिए। इस वक्त सब खाली है। कमरे के पिछवाड़े में जरा सी जगह खाली है, जिसके चारों ओर ऊँची दीवारें है। यहाँ मास्टर साहब की बूढ़ी घरवाली ने तुलसी के कुछ घने झाड़ बो रखे है और उनके पास एक चबूतरे पर बैठकर वह लगभग ५० बरसों से नियमित रूप से भगवान की पूजा करती रही है।

धड़कते दिल से मास्टर साहब इस घने झाड़ तक आ पहुँचे, जो मास्टर साहब की घरवाली के प्रथम बार बोए गए तुलसी दल की चौबीसवीं औलाद था।

ओह, मेरे भगवान! यह सब क्या सच है! तुलसी के उस झाड़ के नीचे नन्हे सत्ती और नन्हें प्रकाश के क्षत-विक्षत निष्प्राण देह पड़े हैं, मानो अनजान शिशु डरकर माँ तुलसी की गोद मे आसरा पाने आए हों! उधर चबूतरे पर माँ-बेटी--मास्टर साहब की जीवन-संगिनी अपनी बड़ी लड़की से चिपक कर पड़ रही है--निष्प्राण, निस्पन्द!

क्षण-भर के लिए मास्टर साहब को प्रतीत हुआ, जैसे वे स्वयं निष्प्राण हो गए हैं। उनके हृदय की सम्पूर्ण अनुभूति एकाएक सन्न होकर एकदम निष्क्रिय बन गई। परन्तु अभी तो मास्टर साहब ने सभी कुछ नहीं देखा! उनकी लाड़ली निम्मो कहाँ है?

बूढ़े मास्टर की बेहोश होती हुई चेतना खुद-ब-खुद जागृत हो गई! वह अत्यन्त करुण स्वर में चीख उठे--"निम्मो! निम्मो! बेटी निम्मो!"

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला।

:o: :o: :o: :o:

उसके बाद घण्टों की मेहनत से मास्टर रामरतन रात के महाप्रलय के सम्बन्ध में जो कुछ जान पाए, उसका सार इतना ही था कि चाँद डूबने से घण्टा-भर पहले मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या ने गाँव के उस भाग पर हमला कर दिया, जिसमे हिन्दू और सिक्ख रहने थे। यह हमला इतना अचानक और इतने जोर से हुआ कि उसका मुकाबला किया ही नहीं जा सका। आक्रमणकारी लोगों में बहुत बड़ी संख्या आस-पास के तथा दूर से आए मुसलमान किसानों की थी; परन्तु यह कह सकना कठिन है गाँव के मुसलमान भी उसमें शामिल थे या नहीं। भयंकर मार-काट और लूट-मार के बाद गुण्डे लूटा हुआ माल बैल गाड़ियों मे भरकर अपने साथ ले गए है। गाँव की बीसों जवान लड़कियों को भी वे अपने साथ लेते गए है। केवल वे लोग ही बच पाए, जो रात के वक्त घरों से भाग कर खेतों में जा छिपे या दूर भाग गए। वे सब लोग अब एक जगह इकट्ठे कर लिए

गए हैं और उन्हें नए हिन्दोस्तान में भेजने का इन्तज़ाम किया जा रहा है। मास्टर साहब के एक पड़ोसी ने इतना ही बताया कि जब वह उनके घर के सामने से होकर भागा जा रहा था, तो घर के भीतर से भयंकर हाहाकार दूर तक सुनाई दे रहा था। निम्मो के सम्बन्ध में सभी का यह खयाल था कि गुण्डे ज़रूर उसे अपने साथ उठा ले गए हैं।

बूढ़े मास्टर की परेशानी की सीमा न रही। जन्म भर के उस अत्यन्त ईश्वरपरायण वृद्ध की अन्तरात्मा ने अपने उस अज्ञात अराध्य देव से पूछा--"मेरे किस अपराध की सज़ा इस छोटी-सी मासूम-सी बच्ची को मिली है, ओ मेरे देवता ?"

अपनी जीवन-संगिनी, बड़ी विधवा पुत्री और दोनों पोतों को एक साथ खोकर बूढ़े मास्टर के लिए जिन्दगी में क्या दिलचस्पी बाकी रह सकती थी ! अच्छा होता कि वह भी साथ ही मर जाते। पर मास्टर अब यह बात सोच भी नहीं सकते थे। उनकी लाड़ली पोती निम्मो ज़िन्दा है और वह गुण्डों के हाथ में है।

अपना जीवन ध्येय चुनने में मास्टर साहब को सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह तो जैसे आसमान पर लिखा हुआ सा उनके सामने आ गया। बूढ़े मास्टर ने निश्चय किया कि वे जिस किसी तरह निम्मो की तलाश करेंगे, किसी-न-किसी तरह उसके पास पहुँच जाएँगे और ?-- साफ़ था कि बूढ़ा मास्टर उसे बचा नहीं सकेगा। तब ? निम्मो के पास पहुँचकर बूढ़ा दादा अपने हाथों अपनी पोती की हत्या करेगा और उसके बाद स्वयं भी मर जाएगा।

साँझ तक गाँव के भले मुसलमानों की मेहनत से वे सब हिन्दू और सिक्ख एक धर्मशाला में एकत्र कर दिए गए, जो प्रभात के महाप्रलय से बाकी बच रहे थे। थाने से दो-चार सिपाही भी उनकी देखभाल के लिए आ पहुँचे और उन्हें जिले की ओर ले जाने का प्रबन्ध किया जाने लगा। परन्तु मास्टर रामरतन इन लोगों में नहीं थे। न जाने वह किस समय चुपचाप गाँव से खिसक गए थे।

गाँव छोड़ने के तीन दिनों के भीतर ही मास्टर रामरतन का जैसे कायाकल्प हो गया। मुँह की झुर्रियाँ और भी गहरी हो गई, आँखें एक तरह से गढ़े में चली गई और उनके नीचे कालिमा-सी पुत गई। ये तीन डरावने दिन उनकी ७० साल की जिन्दगी पर जैसे पूरी तरह छा गए। मास्टर साहब का चेहरा इतना गमगीन और इतना गम्भीर दिखाई देने लगा, जैसे वे अपनी सारी ज़िन्दगी मे कभी न हँसे हों और न मुस्कराए ही हों।

किसी अपरिचित के लिए यह पहचान सकना अब आसान नहीं था कि मास्टर साहब हिन्दू है या मुसलमान। बेतरतीबी से बढ़े हुए और बेपरवाही से बिखरे हुए उनके धूलि-धूसरित बालों ने उनकी आकृति पर फकीरी की छाया डाल दी थी--एक फकीर जो न हिन्दू होता है न मुसलमान। वह फ़कीर बन ही तभी सकता है, जब इस दुई को, इस भेद-भाव को एकदम भूल जाए।

आस-पास की कितनी ही बस्तियों और गाँवों की खाक छानते-छानते मास्टर साहब को यह मालूम हो गया कि उनके गाँव पर आक्रमण करने वालों का मुखिया एक पूरे गाँव का ज़मींदार गुलामरसूल था और यह भी कि यह कितनी ही हिन्दू लड़कियों को अपने साथ अपने गांव ले गया है।

राह की एक सुनसान पगडंडी पर चलते-चलते सहसा बूढ़े मास्टर को अनुभूति हुई कि वह अपने लक्ष्य के बहुत नज़दीक आ पहुँचे है। इस अनुभूति के साथ-ही-साथ उनका हाथ जैसे खुद-ब-खुद जेब में पहुँच गया, जहाँ एक चाकू संभाल कर रखा गया था। बूढ़े मास्टर ने चारों ओर एक खोजती-सी निगाह डाली और जब दूर तक भी उन्हे और कोई मानव-आकृति नहीं दिखाई दी, तो काँपते हाथों से उन्होंने वह चाकू जेब से बाहर निकाल लिया। चलते-चलते बाएँ हाथ में चाकू पकड़ कर दाहिने हाथ से उसे खोला और बिना रुके ही दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से उसकी धार की परीक्षा की। बूढ़े का हाथ बुरी तरह से काँप रहा था। इससे उँगली की मोटी चमड़ी ज़रा-सा कट गई और उस पर खून चमक आया। चार दिनों में पहली बार मास्टर साहब को उत्साह की अनुभूति हुई। खून देखकर एक अजीब तरह

की उत्तेजना उनके थके हुए मन पर छा गई। हाँ, मैं अपना काम बखूबी कर सकूँगा। इस तेज़ चाकू से एक हत्या और इसके बाद आत्महत्या! चाकू बन्द कर उन्होंने जेब में डाल लिया और उनके डगमगाते पैरों की गति स्वयमेव तेज हो गई।

गुलाम रसूल का घर तलाश करने मे मास्टर साहब को देर नहीं लगी। गाँव मे कुल मिला कर २५–३० मकान थे और उनमे सब से बड़ा और सबसे ऊँचा मकान जमींदार का था। उन्होंने मकान के दरवाज़े पर दस्तक दी। क्षण-भर मे मकान के सहन का दरवाज़ा खुल गया और एक बच्चे ने आकर पूछा––"क्या चाहिए?"

मास्टर साहब सहसा चौंक गए। बच्चे की उम्र उनके चार साल के सत्ती से अधिक नहीं थी। तो अभी तक दुनिया में मासूम बच्चे मौजूद हैं! इस महान हत्यारे के घर उनका स्वागत एक बच्चा करेगा, इसकी उम्मीद उन्हें कदापि नहीं थी। मास्टर साहब के झिझक-भरे मौन पर वह बच्चा चकित होने ही वाला था कि उन्होंने कहा––"मियाँ गुलाम रसूल घर पर हैं?"

"कौन, अब्बा?"

"हाँ, तुम्हारे अब्बा।"

इसी वक्त भीतर से एक नारी-कण्ठ सुनाई दिया––"कौन आया है, बेटा हमीद?"

बच्चे ने जबाव दिया––"कोई फ़कीर है अम्मी! अब्बा को पूछता है।"

बड़े दरवाज़े के दाहिनी ओर घर की बैठक थी। क्षण भर बाद बैठक का दरवाज़ा खुल गया और बड़ी उम्र के एक अन्य लड़के मास्टर साहब से भीतर चलने को कहा। बैठक में कुछ मोढ़े रखे थे। एक तरफ एक पलंग पड़ा हुआ था। मास्टर साहब चुपचाप एक मोड़े पर जा बैठे।

वह लड़का बड़ी हैरानी से मास्टर साहब की ओर देख रहा था। उनके बैठ जाने पर उसने पूछा––"चाचा से जाकर क्या कह दूँ? वे साथ के

मकान में गए हैं। मैं अभी जाकर उन्हें बुला लाता हूँ।"

मास्टर साहब इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। फिर भी उनके दिमाग़ ने उन्हें धोखा नहीं दिया। मास्टर साहब आज सुबह नूरपुर से इस गाँव की ओर चले थे। उन्होंने कह दिया--"चचा से कहना, नूरपुर से पैगम आया है।"

लड़का चला गया और मास्टर साहब को जैसे ज़रा सोच सकने की फ़ुरसत मिली। यहाँ तक तो सब ठीक है! अब आगे क्या होगा? गुलाम रसूल अभी आता होगा। परन्तु वे अपनी निम्मो को उससे माँग कैसे सकेंगे? कोई बहाना तलाश करने से शायद काम बन जाए। यह तो साफ़ ही है कि सब लोग उन्हें मुसलमान समझने लगे हैं। क्यों न वे इसी बात का फायदा उठाएँ। वह कह सकते हैं कि नूरपुर का ज़मींदार कुछ लड़कियाँ चाहता है और वह उनके लिए अच्छी कीमत भी देने को तैयार है। इसी बहाने से वे सब लड़कियों को देखने की इच्छा प्रकट कर सकते हैं। और जहाँ तक भेद खुलने का सवाल है, उन्हें उसकी चिन्ता ही क्या है। आखिर वे तो अपनी जान देने ही यहाँ आए हैं। अगर उनकी चाल असफल हो गई, तो वे गुलामरसूल पर तेज़ चाकू से हमला तो कर ही सकते हैं। जो कुछ हो जाए, उतना ही सही। निकट-भविष्य में उन्हे क्या करना होगा, इसका निश्चय उन्होंने अनायास ही कर लिया।

और यह निश्चय कर लेने के साथ-ही-साथ उन्हें ध्यान आया कि उनका अन्त समय सिर पर है। कुछ ही क्षणों के भीतर वे अपने परिवार से जा मिलेंगे, अपने भगवान के चरणों में जा पहुँचेंगे। मास्टर साहब मन-ही-मन राम-नाम का जाप करने लगे।

और सहसा एक अत्यन्त अप्रत्याशित घटना घटित हो गई। जो छोटा बच्चा पहले-पहल मास्टर साहब का स्वागत करने दरवाज़े पर उपस्थित हुए था, उसी हमीद का हाथ पकड़ कर सहसा निम्मो बैठक के दरवाज़े पर आ उपस्थित हुई। बूढ़ा मास्टर सहसा चीख उठा--"निम्मो!"

दरवाज़े पर से ही निम्मो चिल्लाई--"दादा!"

और उसी क्षण बूढ़े रामरतन ने अपनी १५ वर्ष की पोती को गोद मे लिया। न-जाने इतनी शक्ति बूढ़े मास्टर मे कहाँ से आ गई! भावों का पहला उफ़ान निकल जाने के बाद भी मास्टर को यह समझ मे नहीं आया कि वे इस हालत में क्या करे! जेब मे मौजूद तेज़ चाकू की उपस्थिति का ज्ञान उन्हें अब भी था, परन्तु जैसे चाहते हुए भी वह चाकू निकाल नहीं पाए। बूढ़े के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने पाया कि जैसे बच्चा हमीद निम्मो का साथ ही नहीं छोड़ना चाहता। मास्टर साहब के प्रेम का यह तूफान देखकर वह सहम-सा गया है और तब भी उसका दाहिना हाथ निम्मो के बाएँ हाथ को पकड़े हुए है।

मास्टर साहब अभी तक सकते की-सी हालत में थे कि सहसा गली में शोर मच गया--"काफ़िर! काफ़िर!"

मास्टर साहब अभी अपनी जेब से चाकू निकाल भी नहीं पाये थे कि दो जवान मुसलमानों ने उन्हे पकड़ कर जकड़ लिया। घर की एक बूढ़ी औरत ने इतनी ही देर मे घर मे काफ़िर की मौजूदगी की सूचना मोहल्ले भर को दे दी थी।

और उसी वक्त गालियाँ बकते हुए गुलामरसूल ने अपनी बैठक मे प्रवेश किया। मुमकिन था कि अपने नए शिकार को देखते ही गुलामरसूल उसे मारना-पीटना शुरू कर देता। परन्तु कमरे मे मौजूद सभी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब बूढ़े मास्टर पर निगाह पड़ते ही वह जैसे अचम्भे में भरकर चिल्ला उठा--"ओ, मास्टर साहब!"

जिन दो नौजवानों ने मास्टर को पकड़ रखा था, उनकी जकड़ एकाएक कम हो गई। गुलामरसूल क्षण-भर के अन्तर से फिर चिल्लाया--"ओ, मास्टर साहब, आप यहाँ कैसे?"

और बूढ़ा मास्टर, जो इस अप्रत्याशित घटनाचक्र के प्रवाह में एकदम मूक और एकदम संज्ञाहीन-सा बन गया था, सहसा फफक कर रो उठा। दोनों जवानों ने मास्टर साहब को अपनी पकड़ से मुक्त कर दिया और निम्मो अपने दादा से जा चिपकी।

गुलामरसूल ने बूढ़े मास्टर को सान्त्वना देने का प्रयत्न किया। उसने कहा--"मास्टर साहब, बचपन में जब हम रोया करते थे, तो आप हमें चुप कराया करते थे। और आज...." कहते-कहते सहसा गुलामरसूल चुप हो गया। न जाने किस शक्ति ने उसे यह अनुभूति प्रदान कर दी कि उसे यह सब कहने का अधिकार अब नहीं रहा।

बात बदलने की गरज से गुलामरसूल ने कहा--"यह लड़की आपकी क्या लगती है, मास्टर साहब ?"

बूढ़े मास्टर ने सिसकते हुए कहा--"यह मेरी पोती है।"

गुलामरसूल ने कहा--"तभी !" और वह चुप हो रहा।

बूढ़ा मास्टर निम्मो को छाती से लगाकर अब भी धीरे-धीरे सिसक रहा था। उसने कोई सवाल नहीं किया। क्षण-भर की चुप्पी के बाद गुलामरसूल ने खुद ही कहा--"शायद तभी चार ही दिनों मे हमीद इसे अपनी सगी बहन समझने लगा है।" और तब आसमान की ओर ताककर उसने कहा--"खुदा का शुक्र है !"

मानवीय अनुभूति का हल्का-सा आसरा पाकर बूढ़े मास्टर के हृदय की सम्पूर्ण व्यथा आँखों की राह बह चली। जैसे गरमी पाकर बरफ पिघलती है।

कुछ क्षणों तक गुलामरसूल चुपचाप मास्टर साहब की ओर देखता रहा और उसके बाद धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उसने बूढ़े मास्टर को अपनी छाती से लगा लिया। मास्टर साहब ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। गुलाम-रसूल ने बहुत कोमल और धीमे शब्दों में कहा : "धीरज से काम लो मास्टर साहब ! तुम्हें अब कोई भय नहीं है ! निम्मो के साथ मेरी हिफ़ाजत में तुम चाहे जहाँ चले जा सकोगे। मैं खुद तुम्हें हिन्दोस्तान तक छोड़कर आऊँगा !"

प्रथम मृत्यु

"देव और यजनी अचानक अपने साथियों से बिछुड़ गए।"

—कहनेको तो मैं कह गया कि देव और यजनी अपने साथियों से बिछुड़ गए; परन्तु वास्तव मे वे और उनके साथी कौन थे, कहाँ से आए थे, किस तरह आए थे, इस सम्बन्ध में मुझे तो क्या, किसी को भी कुछ भी नहीं मालूम। न वे तबतक आपस मे बाते करना सीखे थे, न तब तक भाषा का ही आविष्कार हुआ था और न तब तक किसी का कोई नाम-धाम ही था। परन्तु उन दो व्यक्तियों के नाम, जिनमे एक पुरुष था और दूसरी स्त्री, देव और यजनी रख लिए बिना काम भी तो नहीं चलता।

हम मानव-जाति के प्रथम पिताओं ने तब अभी-अभी जन्म लिया था। गिजाइयों के ढेर के समान हमारे प्रथम पूर्वजों का वह गिरोह अपनी माता पृथिवी के विशाल वक्षस्थल पर, बिना किसी उद्देश्य के, एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरकता फिरता था। धूल, मिट्टी, पत्थर और कंकर से भरी यह पृथिवी आज हमें चाहे एक निर्जीव ठोस आधार से बढ़कर कुछ भी प्रतीत न हो, परन्तु यही पृथिवी हमारे उन प्रथम पिताओं की सच्ची और एकमात्र माँ थी। माता पृथिवी मानो तब सच्चे अर्थों में प्रसूतिका-गृह में थी, और उनका वक्षस्थल अनायास ही सुमधुर फल-फूलों से भर आया था। पृथिवी हरे-भरे सुकोमल परन्तु खूब लम्बे घास से लदी-सी पड़ी थी। जगह-जगह ठंडे और निर्मल जल के झरने बहते थे। न सरदी थी और न गरमी। इन मधुर परिस्थितियों में माता पृथिवी मनुष्य नाम की अपनी इस नई सन्तान का मानो बड़े चाव के साथ पालन-पोषण कर

रही थी। स्वस्थ, सुन्दर, नग्न और नितान्त अबोध स्त्री-पुरुषों का वह गिरोह निरुद्देश्य भाव से इधर-उधर भटकता फिरता था।

हाँ, तो एक दिन देव और यजनी अचानक अपने इस गिरोह से बिछुड़ गए। इस कार्य के लिए उन्होंने परस्पर कोई समझौता या षड्यन्त्र नहीं किया था। जिस तरह आज भी कभी-कभी एक आध परिन्दा अपने गिरोहों से बिछुड़ जाया करता है, ठीक उसी तरह अचानक यजनी ने दो-चार सुन्दर तितलियों को देखा और उन्हें पकड़ने की इच्छा से वह जंगल की फूलों से भरी उन झाड़ियों मे बढ़ती चली गई। प्रतिक्षण यजनी को अनुभव होता कि उसने किसी तितली को अभी पकड़ा और अभी पकड़ा; परन्तु हर बार तितलियाँ उसके हाथ मे आते-आते रह जाती थीं। बहुत समय तक यजनी तन्मय होकर अपने इसी खेल में मस्त रही। उधर देव को अचानक कहीं प्यास अनुभव हुई, तो वह एक झरने की ओर बढ़ गया। दोपहर का समय था, और वह झरना देव को निमन्त्रण देता हुआ-सा प्रतीत हुआ। नंगा देव उसी क्षण पानी मे कूद गया और मजे ले-कर डुबकियाँ लगाने लगा। बहुत समय बाद जब वह लौटा, तो उसने देखा कि कहीं कोई भी नहीं है, और उसके साथी न जाने किस ओर बढ़ गए हैं।

देव के हृदय में पहली बार चिन्ता का जन्म हुआ। वह भेदती-सी निगाहों से उस घने जंगल के आर-पार देखने का व्यर्थ प्रयास करने लगा। इसी समय उसकी निगाह यजनी पर पड़ी, जो अभी तक एक भी तितली नहीं पकड़ पाई थी। देव बिलकुल निरर्थक साथ ही अर्थपूर्ण ध्वनि मे—'ओ–ो–ो' की ऊँची पुकार कर उठा। यजनी का ध्यान बँटा और चौंक कर उसने देव की ओर देखा। अचानक उसे भी ख्याल आया कि ओह, वह तो अकेली रह गई है!

किसी दैवी प्रेरणा ने देव और यजनी को एक दूसरे के साथ बाँध दिया। दोनों जैसे मन-ही-मन समझ गए कि गिरोह न सही, कम-से-कम हम दोनों को एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

जीवन में पहली बार उन्हें भय की अनुभूति हुई और इसी अनुभूति के

कारण उन्हें अपने गिरोह के सान्निध्य और सुरक्षा की आवश्यकता भी अनुभव हुई; मगर अब गिरोह का कहीं कुछ पता नहीं था। सब तरफ़ ऊँची-ऊँची घास उगी हुई थी, इससे पैरों के निशान तो दिखाई दे ही न सकते थे। वन में विशालकाय पक्षी चहचहा रहे थे, और वृक्षों की पत्तियां हवा में हिल-हिल कर सॉय-सॉय कर रही थीं। यजनी देव के एकदम निकट चली आई, और तब बहुत देर तक दोनों बड़ी गम्भीरता के साथ एक ही उद्देश्य से देखते-भालते रहे, चीख़ते-चिल्लाते रहे; मगर पहर-भर बीत गया और गिरोह का कहीं कुछ पता न चला।

जब साँझ होने को आई, तो दोनों को निकट ही से किसी वन्य पशु की भयंकर आवाज़ सुनाई दी। यजनी सहसा घबरा गई और देव के निकट आकर उसने देव का हाथ पकड़ लिया। डर तो देव भी रहा था, परन्तु उतना नहीं। उसने यजनी को ओर बहुत कोमल भाव से देखा, मानो उसे आश्वासन दे रहा हो। यजनी की बाँह अपनी बाँह में लेकर वह उसे झरने की ओर ले चला।

झरने की धारा में बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हुई थीं। पृथिवी के अन्तर का अत्यन्त ताज़ा और अत्यन्त स्वच्छ जल इन चट्टानों पर गिर कर जैसे गरज उठता था और श्वेत-श्वेत होकर बड़ी तीव्रता के साथ आगे को ओर फिसल चलता था। दाहिनी ओर ज़रा ऊँचाई पर एक हरा-हरा मैदान था, सुन्दर और सुगन्धित फूलों से सुवासित। यह मैदान चारों ओर से बड़े-बड़े वृक्षों से घिरा हुआ था। देव ने यजनी को झरने की एक बड़ी चट्टान पर बैठा दिया और स्वयं वह निकट के वृक्षों से बहुत-से फल तोड़ लाया। इन फलों को यजनी बड़े स्वाद के साथ खाने लगी। उसकी भूख चमक आई थी। यह कहा जा सकता है कि मानव-जाति के इतिहास में सब से पहली बार आज स्त्री ने स्वेच्छा से पुरुष की संरक्षा और सहायता स्वीकार की।

फल खाकर दोनों ने झरने का जल पीया। रात का अन्धकार इस समय तक सभी ओर व्याप्त हो गया था। स्वच्छ आकाश में चाँद चमक

रहा था। देव और यजनी उस चट्टान पर चुपचाप बैठे जलधार में चाँद के सैकड़ों-हज़ारों प्रतिबिम्ब देख रहे थे। इस निर्जनता में दोनों के हृदय मे भय का संचार हो आया। यजनी क्रमशः देव की ओर खिसकने लगी और रात गहरी हो जाने पर एक ऐसा क्षण भी आया, जब यजनी देव से बिलकुल सटकर बैठ गई। उसके हृदय की धड़कन बहुत बढ़ गई थी।

देव सहसा उठ खड़ा हुआ, मानो उसे कोई बात सूझ गई हो। चकिता और भीता यजनी का हाथ पकड़ कर वह उसे निकट के एक विशाल वृक्ष के नीचे ले चला। वहाँ पहुँच कर अपने कन्धे और बाँह का आसरा देकर उसने यजनी को वृक्ष पर चढ़ा दिया और स्वयं भी कूदकर ऊपर चढ़ गया। झटका देकर उसने एक शाखा तोड़ ली और दो-तीन प्रमुख डालियों के उद्‌गम पर उसे तिरछा बिछा दिया। वृक्ष के पत्तों और छोटी-छोटी टहनियों से बीच का अन्तराल अपेक्षाकृत मुलायम बना लिया गया, और तब देव और यजनी तने से ढासना लगाकर इसी मचान पर सो गए।

देव की नींद पहले टूटी। सुबह होने को थी। पूरब की ओर का सम्पूर्ण आकाश प्रकाशमान हो उठा था। उस वृक्ष पर, आस-पास तथा आकाश में सैकड़ों-हज़ारों छोटे-बड़े पक्षी कलरव कर रहे थे। देव ने देखा, उसके गले मे हाथ डाले यजनी अभी तक मज़े की नींद सो रही है। अनेक क्षणों तक जागते रहने पर भी देव उसी तरह लेटा रहा। यजनी का हाथ अपने गले पर से हटाने की जैसे उसकी इच्छा ही नहीं हुई।

इसी समय अचानक देव की नज़र यजनी की टाँगों के एकदम निकट किसी भूरी-सी हिलती-डुलती-सी चीज़ पर पड़ी। वह चौंक कर उठ बैठा और तब यजनीकी नींद भी उचट गई।

उन्होंने विस्मय के साथ देखा कि एक बन्दरी उनके अत्यन्त निकट लेटी हुई है और रात-ही-रात में उसने एक बच्चा भी दे डाला है। इन दोनों को जाग गया देखकर भी न तो वह बन्दरी वहाँ से भागी और न उठी ही। यजनी ने बड़ी प्यारभरी दृष्टि से इस बन्दरी और उसके ज़रा-से बच्चे की ओर देखा।

[२]

झरने के निकट के इसी मैदान पर मानव-जाति के ये दोनों पूर्वज प्रतिदिन नए-नए आविष्कार करते रहे। कुछ समय के बाद क्रमशः वहां उनकी पूरी घर-गिरस्थी जम गई। एक बड़े वृक्ष की छाया में एक जगह, लकड़ी के बेढंगे टुकड़ों को मिला-मिलाकर एक घेरा बनाया गया। इस घेरे का एक भाग पत्तों और टहनियों से ढक दिया गया। इन टहनियों पर कुछ मिट्टी बिछाई गई।

इस घर में देव और यजनी, बन्दर दम्पति तथा उनके बच्चे सब एक साथ रहते थे। तब तक मनुष्यों की पृथक् भाषा का आविष्कार नहीं हुआ था। देव और यजनी आ-आ करते और बन्दर चीं-चीं। बस, इन्हीं दो ध्वनियों से वे आपस में एक दूसरे के प्रति सभी तरह के भाव सफलतापूर्वक व्यक्त कर लेते थे।

देव और यजनी के इस परिवार के कतिपय अन्य सदस्य भी थे। आठ-दस हिरण, एक हाथी, दो भैंसे, दो रीछ और कुछ खरगोश। इन सभी जीवधारियों में परस्पर प्रगाढ़ घनिष्ठता थी। देव इस परिवार का मुखिया था और यजनी उसकी सहायिका। हँसी-मजाक, खेल-कूद, लड़ाई-झगड़ा, खाना-पीना, मान-मनौवल सभी कुछ वहाँ होता था। हाथी अपनी सूँड़ में पानी भर लाता और देव पर आकर उंडेल देता। बन्दर वृक्षों पर चढ़कर हाथी पर फलों के निशाने जमाया करते। भैंसे आपस में कुश्ती करते। कभी-कभी चाँदनी रात में जब ये सब प्राणी एकत्र होते, तो रीछ उन्हें अपना नृत्य दिखाया करते। खरगोश अपनी कोमल-सी जिह्वा से देव और यजनी का शरीर चाटा करते। इनमें यदि सबसे निरीह प्राणी थे तो हिरण। देव और यजनी के साथ अपनी पीठ या सींग सहला लेने के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी करना नहीं आता था।

क्रमशः कुछ पक्षी भी इस परिवार के मित्र बन गए। ये पक्षी देव और यजनी तथा उनकी मित्र-मण्डली को हिंस्र पशुओं के आगमन की सूचना दिया करते थे। इस सम्पूर्ण परिवार में परस्पर इतना सौहार्द और इतना

सहयोग था कि उन्हें घातक पशुओं से भय ही प्रतीत न होता था। आस्मान के पक्षी और वृक्षों की शाखाओं पर बैठे बन्दर इतना शोर मचाते कि हिंस्र पशुओं को निकट आने का साहस ही न होता था।

एक दिन यजनी घेरे से बाहर न निकल सकी। साँझ तक देव ने अत्यन्त आश्चर्य और कौतूहल के साथ देखा कि यजनी एक सुन्दर-से बच्चे की माँ बन गई है, और यह भी कि वह बच्चा बहुत अधिक रोता है।

ऋतुओं का चक्र चलता चला गया। बरसों पर बरस बीतते गए और देव तथा यजनी का परिवार भी बढ़ता चला गया।

[३]

बरसात के दिन थे। चारों ओर ऊँची-ऊँची घास उग आई थी। झरने का पानी कुछ गदला-सा हो गया। पिछले दो-तीन दिनों से वर्षा की कुछ ऐसी झड़ी लगी थी कि देव और यजनी का वह घर, जिसपर इस समय तक पत्थर की पतली-पतली स्लेटें-सी डाल दी गई थीं, लगभग जलमग्न हो गया था। वर्षा की इस झड़ी में, एक बात पर देव और यजनी में परस्पर झगड़ा हो गया।

बात भी कुछ मामूली नहीं थी। पिछले अनेक बरसों में वह बन्दरी आठ-दस बन्दरों की माँ और पन्द्रह बीस की दादी बन गई थी। इस प्रतिमास बढ़ते हुए परिवार के लिए सहन के दूसरी ओर एक छोटा-सा पृथक् आवरण डाल देने का प्रस्ताव देव ने किया था। परन्तु वह बूढ़ी बन्दरी यजनी की अन्तरंग सखी थी। यजनी चाहती थी कि वे सब एक साथ एक छत के नीचे रहें। उसने इशारों-ही-इशारों से देव के प्रस्ताव का घोर विरोध किया, परन्तु आख़िर देव पुरुष था और यजनी नारी। देव की विजय रही और घर के दूसरी ओर का एक ज़रा-सा भाग पत्थरों और पत्तों से ढक-सा दिया गया। बन्दर-दम्पति अपने पुत्र-पौत्रों समेत इसी आवरण के नीचे आ गए।

परन्तु दुर्भाग्य कुछ ऐसा रहा कि वानर-परिवार के नवगृह-प्रवेश करते-न-करते वर्षा की झड़ी लग गई। यह स्थान अपेक्षाकृत नीचाई पर

था, और पिछली रात जो ज़ोर की वर्षा हुई थी, उसकी बदौलत वहाँ पानी ही पानी जमा हो गया। सभी बन्दर रात-भर पानी में भीगते रहे; परन्तु उन्होंने देव और यजनी की नींद में बाधा नहीं पहुँचाई। दूसरे दिन इसी बात पर यजनी ने देव को खूब आड़े हाथों लिया। इशारे-ही-इशारे से उसने देव पर यह भी व्यक्त कर दिया कि उस भलेमानस में तीन बच्चों का बाप बन जाने पर भी, रत्तीभर भी अक्ल नहीं है!

यह झगड़ा इतना बढ़ा कि देव घर छोड़कर चला गया। आधा दिन बीत चुका था। अभी वर्षा समाप्त होने के लक्षण प्रतीत नहीं होते थे। पृथिवी पर साँझ का-सा अँधेरा व्याप्त था और सब जीव-जन्तु अपने-अपने आवासों में सिकुड़ कर बैठे हुए थे। सभी ओर सन्नाटा और नीरवता छाई थी। केवल झरने की आवाज़ और भी अधिक उग्र होकर इस निस्तब्धता को मानो सप्राण बना रही थी। ऐसे समय देव घर छोड़कर बाहर चला गया। यजनी का गुस्सा अभी तक उतरा नहीं था। उसने देव से वापस लौट आने का आग्रह नहीं किया और इस भयंकर वर्षा में जलमग्न वन के भीतर बढ़ते जाने से उसे रोका नहीं।

मगर जब पहर भर दिन और बीत गया और देव नहीं लौटा, तब यजनी का जी व्याकुल होने लगा। वर्षा अभी तक बन्द नहीं हुई थी; परन्तु अन्धकार प्रतिक्षण बढ़ता चला जा रहा था। झरने का आकार, प्रवाह और शोर सभी कुछ बहुत बढ़ गया था। प्रतीत होता था, जैसे वह झोपड़ी के बहुत समीप आकर बहने लगा है। यजनी का चित्त सहसा व्याकुल हो गया और घेरे से बाहर आकर खोजती दृष्टि से वह चारों ओर देखने लगी। अभी अन्धकार पूर्णरूप से व्याप्त नहीं हुआ था; परन्तु इस मलिन-से उजियारे में यजनी को देव की कहीं छाया तक भी दिखाई नहीं दी। वह घबराकर सहसा पुकार उठी--"ओ! ो! ो!रे!!"

यजनी की तीन सन्तानों ने भी उसका साथ दिया--"आ-ा-ा!"

बन्दरों का वह सम्पूर्ण परिवार कूद कर घेरे की दीवार पर आ बैठा और वहाँ से वे सब बन्दर चिल्ला उठे--"गुर्र! गुर्र! गुर्र!"

आस-पास के सभी वृक्षों मे से पक्षी भी एक साथ चिल्ला उठे--"चीं ! चीं ! चीं !"

मानो ये सब प्राणी मिलकर एकसाथ देव को पुकार रहे हों।

सहसा दूरपर, जंगल के अन्धकार में से ही, एक चीख सुनाई दी, और उसके कुछ ही क्षणों बाद बहुत ही व्याकुल दशा मे घर की ओर दौड़कर आता हुआ देव दिखाई पड़ा। यजनी भाग कर उससे लिपट गई और सभी बन्दरों ने एक साथ उसे घेर लिया। परन्तु न जाने क्यों देव का बहुत बुरा हाल था। उसका शरीर नीला-सा पड़ता जा रहा था और मुह से झाग बह रहा था। चलने-फिरने की सामर्थ्य उसमें बाकी नहीं रही थी। यजनी बड़ी कठिनता से उसे आसरा देकर अपने घर के भीतर तक ले आई।

छत के नीचे पहुँचते ही देव जैसे निश्शक्त-सा होकर गिर पड़ा। यजनी चीखती-सी पुकार मे गों-गों कर उठी। मानो वह पूछ रही हो--"तुम्हें यह क्या हो गया प्राणप्यारे !"

देव ने अपने पैर की ओर संकेत किया और इशारे ही इशारे मे बताया--"वह जो काला-काला लम्बा-सा कीड़ा कभी-कभी झाड़ियों के आस-पास रेंगता हुआ मिलता है, जिसे देखते ही आस्मान भर के सभी पक्षी एक साथ चीखने-चिल्लाने लगते है, वही मुझे पैर की इस उँगली पर काट गया है।"

यजनी को कुछ भी नहीं सूझा कि इस दशा मे क्या करना चाहिए। किसी अज्ञात आशंका से उसका हृदय कॉप गया। उसकी ऑखों मे ऑसू भर आए। देव सूखे पुआल के ढेर पर लेटा हुआ था, यजनी पूरी शक्ति के साथ उसका शरीर दबाने लगी। अपने पुत्रों से भी उसने इशारा किया कि वे देव का सिर, पैर और टॉगे सहलाएँ। सभी बन्दर शोकपूर्ण मुद्रा बनाए पास ही बैठ गए।

धीरे-धीरे देव को ऊँघ-सी आने लगी। उसके मुँह से झाग निकल रहा था और श्वास घरघराहट के साथ बड़ी तेजी से चल रहा था। यजनी स्पष्ट देख रही थी कि देव अत्यन्त कष्ट में है; परन्तु उसे कुछ भी

सूझता नहीं था कि वह क्या करे। इस कष्ट का परिणाम क्या होगा, यह तो यजनी की कल्पना से भी परे की बात थी।

क्रमशः देव मूर्छित हो गया। उसके श्वास लेने की गति भी क्रमशः मन्द हो गई, यद्यपि गले की घरघराहट अभी तक जारी थी। यजनी ने समझा कि उन्हे नींद आगई है। उसका हृदय यद्यपि अत्यधिक व्याकुल था, परन्तु यह देखकर उसे एक तरह का आश्वासन ही पहुँचा कि दिन-भर के थके-माँदे वे अब सो गए हैं, और नींद से उनकी तकलीफ भी दूर हो जाएगी।

रात बढ़ जाने पर भी अत्यन्त व्याकुल चित्त से यजनी देव के निकट बैठी रही। बच्चों को उसने सुला दिया था। बन्दर भी अपनी जगह जा बैठे थे। सभी ओर घना अन्धकार व्याप्त था। उस छप्पर के नीचे कहीं कुछ भी देख सकना सम्भव नहीं था। यजनी देव की छाती पर हाथ रखे उससे सटकर बैठी हुई थी। देव मूर्छित पड़ा था और उसकी साँस बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। क्रमशः एक क्षण ऐसा भी आया, जब देव की साँस एकदम बन्द हो गई, यद्यपि उसके शरीर की गरमी अब भी उसी तरह कायम थी।

किसी अज्ञात आशंका से यजनी का चित्त डूब-सा गया। उसने देव के निस्पन्द शरीर के साथ अपना सम्पूर्ण शरीर सटा दिया, जैसे अपने प्रियतम को अपने अंक में लेकर वह विश्व-भर को चुनौती दे रही हो कि कौन है, जो उसके रहते देव को उससे छीनकर ले जासकता है।

सारी रात यजनी उसी तरह लेटी रही। उसे क्षण-भर के लिए भी नींद नहीं आई। रात ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, त्यों-त्यों यजनी को एक और अनुभूति-सी होने लगी। वह यह कि देव का स्पन्दन-रहित शरीर क्रमशः ठण्डा पड़ता चला जा रहा है और यह भी कि उसके अंगों में अकड़न-सी आती जा रही है।

इसी रात वर्षा बन्द हो गई और बादल फट गए। ऊषा की लालिमा जब आकाश में फूटने लगी, तब बड़े साहस के साथ उसने देव का शरीर हिलाया, जैसे वह उसे जगाना चाहती हो। परन्तु देव नहीं जागा। यजनी ने समझा, वे अभी तक गहरी नींद में सो रहे हैं, उन्हें छेड़ना

उचित नहीं।

प्रातःकाल सभी बन्दरों ने पुनः देव को घेर लिया। सब का ख़याल था कि देव अभी सो रहा है। सभी के चित्त किसी अनिर्वचनीय, अज्ञात आशंका से भरे हुए थे। मगर सभी के लिए वह आशंका पूर्णरूप से अबुद्धि-गम्य थी।

सूरज आस्मान में चढ़ आया, और देव की नींद नहीं टूटी। यजनी इस समय तक बेहद घबरा गई। वह बार-बार जाकर देव को हिलाती थी, पुकारती थी, जगाती थी। परन्तु देव ऐसी गहरी नींद में सोया था, जो नींद टूटने मे ही न आती थी।

बहुत दिनों के बाद आज बादल छँटे थे। देव और यजनी के सभी मित्र उनसे मिलने के लिए वहाँ आने लगे। रीछ, हिरण, भैसे, खरगोश, तोते, चिड़ियाँ--सभी वहाँ एकत्र होगए। यजनी के आदेश पर बन्दरों ने एक ओर का घेरा तोड़ डाला, और सभी जीव-जन्तु भीतर आकर देव के आस-पास बैठ गए। देव अभी तक निद्रित पड़ा था, और किसी को यह न सूझ पड़ता था कि उसकी नींद किस तरह तोड़ी जाए।

दोपहर होते-न-होते हाथी भी वहाँ आ पहुँचा। आज वह बड़ा खुश था; परन्तु देव के घर के निकट पहुँचते-न-पहुँचते उसका हृदय भी किसी आशंका मे भर गया। उसी समय उसकी दृष्टि सिसकती हुई यजनी पर पड़ी और वह समझ गया कि वायुमंडल में व्याप्त इस गहरी उदासी का कारण क्या है।

शीघ्रता से हाथी झरने की ओर गया और अपनी सूँड में जितना पानी समा सका, भरकर ले आया। वह पानी उसने एक साथ देव के शरीर पर उलट दिया, और इसके साथ-ही-साथ चिंघाड़ मारकर वह गरज उठा। मानो अपने मित्र के साथ किए गए इस मज़ाक का आनन्द ले रहा हो।

परन्तु देव तब भी नहीं जागा।

हाथी क्षण-भर के लिए तो ठिठका; परन्तु इसके बाद अपनी सूँड से वह देव का हाथ हिलाने लगा। पर देव की नींद तब भी नहीं टूटी।

तब हाथी दौड़ा हुआ बाहर की ओर चला। निकट ही से वह फलों से भरी अनेक शाखाएँ तोड़ लाया और उन्हें यजनी के नजदीक रखकर वापस लौट चला। मानो उससे कहता गया कि तुम तब तक इन्हें फल खिलाओ, मैं अभी-अभी वापस आया।

यजनी ने फल तोड़े और उन्हें चीर-चीर कर वह सोए हुए देव के मुँह मे डालने लगी। देव के होंठ तो खुल गए; परन्तु दाँत भिचे ही रह गए, उनके भीतर कुछ भी नहीं जा सका।

इसी समय हाथी वापस लौटा। अब के वह अनेक तरह के सुगन्धित फूल और पत्तियाँ अपने साथ लाया था। इन फूल-पत्तों से उसने देव के शरीर को ढक दिया।

सारा दिन देव को जगाने के प्रयत्न जारी रहे; परन्तु वह नहीं जागा। इसी यत्न मे पुनः रात हो गई। रात, जो सोने के लिए बनी है। रात मे देव को क्यों जगाया जाए। उसे सोने दो। रातभर जागकर यजनी उसकी सेवा करेगी।

क्रमशः दूसरा दिन भी निकल गया। देव को आज तो जगाना ही होगा। इतना लम्बा सोना भी किस काम का। यह काम आज बन्दरों ने अपने जिम्मे लिया। हाथी आज चुपचाप और गुमसुम-सा बैठा था। जैसे वह देव से रूठ गया हो, अथवा उसकी ओर से निराश हो गया हो। बन्दर देव के शरीर में गुदगुदी करने लगे। जबरदस्ती, परन्तु प्यार के साथ, उसका मुह और आँखें खोलने लगे। परन्तु देव फिर भी नहीं जागा।

यजनी के हृदय का सम्पूर्ण उत्साह अब तक नष्ट हो चुका था। उसे कुछ समझ ही नहीं आता था कि आखिर इतना अचानक यह सब क्या हो गया। देव की यह कैसी दशा हो गई! आज तक तो कभी ऐसा हुआ नहीं था। उनकी नींद क्यों नहीं टूटती? उन्हें अब भूख क्यों नहीं लगती? वह अब साँस क्यों नहीं लेते? उनका शरीर अब ठण्डा क्यों पड़ गया है? वह अब जागते क्यों नहीं? देव! तुम कब जागोगे? मै नासमझ नारी हूँ! मैं ग़लती पर थी! मेरा अपराध था! आगे से मै कभी तुम पर नाराज

नहीं होऊँगी! ओह नाथ! तुम जागते क्यों नहीं?

परन्तु देव तब भी नहीं जागा!

साँझ होते-न-होते एक नई बात उन सब को अनुभव हुई। देव के शरीर पर कल जो फूल-पत्तियाँ डाली गई थीं, इस समय तक वे सब मुरझा चुकी थीं, और अब वहाँ से एक असह्य-सी दुर्गन्ध आने लगी थी। किसी को कुछ भी समझ न आया कि यह मामला क्या है? फिर भी जैसे किसी अन्तःप्रेरणा से यजनी सब कुछ समझ गई। ओह, उसके नाथ नहीं जागे और अब उनके शरीर से दुर्गन्ध भी आने लगी है।

रात को वह दुर्गन्ध और भी बढ़ गई। यहाँ तक कि घर भर मे किसी से सोया नहीं गया।

तीसरे दिन देव की दशा और भी बिगड़ गई। उसका शरीर काला और पिलपिला-सा हो गया। आँखें बैठ गई और आकार बहुत भयावना हो उठा। दुर्गन्ध अत्यधिक बढ़ गई। यह सब तो हो गया; परन्तु देव की नींद नहीं टूटी।

क्रमशः देव के सभी मित्र, वहाँ एकत्र हो गए—मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी। तीव्र दुर्गन्ध मे सभी का चित्त व्याकुल हो रहा था; परन्तु जैसे किसी की समझ मे ही न आता था कि अब किया क्या जाए। देव उनके सामने सोया हुआ है, उसकी दशा इतना अधिक बिगड़ गई है, फिर भी वह जागता क्यों नहीं! क्या वह जाग ही नहीं सकता!

सबसे पहले हाथी ने साहस किया। यजनी के समान वह भी अब पूरे तौर से देव की ओर से निराश हो चुका था। शोकमग्न तो वह भी था, परन्तु उसके होश-हवास दुरुस्त थे। आगे बढ़कर बड़े आदर के साथ उसने देव के गलित से शरीर को उठा लिया और बहुत आहिस्ते-आहिस्ते झरने की ओर बढ़ चला।

मानव-जाति के इतिहास में वह पहली अरथी अन्तिम क्रिया के लिए चली। हाथी के पीछे-पीछे यजनी ऊँचे स्वर में रोते-पीटते चली जा रही थी। उसके पीछे उसके बच्चे, और तब बन्दर, भैंसे, रीछ, हिरण, खरगोश आदि

सभी चुपचाप संत्रस्त भाव से झरने की ओर बढ़े जा रहे थे। आस्मान में हज़ारों-लाखों पक्षी एकत्र हो गए थे, और वे सब भी बहुत ही करुण स्वर में चीं-चीं कर रहे थे। इन सब से बहुत ऊँचाई पर बड़े-बड़े गीध उड़ रहे थे--निर्मम, लालची।

बहुत ही धीमी चाल से मैदान पार कर हाथी क्रमशः झरने के निकट आ पहुँचा। झरने की बाढ़ अभी तक उतरी नहीं थी। हाथी ने पूरा जोर लगाकर देव का शव झरने के बीचोबीच फेंक दिया, और उसके बाद अपनी सूंड़ ऊँची कर वह बहुत ही करुण स्वर मे चीत्कार कर उठा।

और मानव-जाति की प्रथम विधवा यजनी का करुण क्रन्दन क्या वर्णन करने की चीज़ है!

गुलाब

श्रीनगर से जो सड़क शाही चश्मे की तरफ़ गई है, वह टेढ़ी-मेढ़ी होकर एक सुन्दर पहाड़ी के दामन मे इस तरह लेटी हुई है, जैसे महादेव की जटा में साँप लिपटा हुआ हो। सड़क के आस-पास ज़्यादा आबादी नहीं है। सिर्फ चिनार और सफेदे के घने वृक्षों की छाया में कहीं-कहीं काश्मीरी किसानों के पाँच-पाँच, सात-सात लकड़ी के दुमंजिले मकान है। सड़क रात के समय बिल्कुल सुनसान पड़ी रहती है। दिन में मौके-बे-मौके भोंपो-भोंपो करती हुई मोटर या लारी बड़ी तेज़ी से इस सड़क पर से निकल जाती है। किसी-किसी समय लकड़ी के भारी पहियों की सुस्त चुरभुराहट के साथ मस्त और बेफ़िक्र आवाज में गाते हुए गाड़ीवानों की आवाज़ भी इस मार्ग के सन्नाटे को भंग करती है। इसी सड़क पर हसना नाम का एक बूढ़ा काश्मीरी सन्नाटे में दिन-भर अकेला बैठा रहकर मुसाफ़िरों का इन्तजार किया करता है। कोई दे चाहे न दे, वह सब के लिए अपने खुदा से मीठी-मीठी दुआएँ माँगता है। चिनार के एक पुराने वृक्ष की छाया में, ठीक एक ही स्थान पर, वह लगातार न जाने कितने बरसों से बैठा हुआ दिखाई देता है। जिस तरह से सड़क के किनारे के पुराने वृक्षों और बड़ी-बड़ी चट्टानों के सम्बन्ध में किसी को ज्ञात नहीं कि वे कब से वहाँ इस तरह मौ . है, और उनको देखने का सब को अभ्यास हो गया है, उसी तरह से यह बूढ़ा हसना भी, न जाने कितने बरसों से आशीर्वाद देने वाले एक स्थाणु के समान ठीक एक ही स्थान पर जमकर बैठा हुआ दिखाई देता है, और राहगीरों को उसे इसी रूप में देखने का अभ्यास हो गया है।

(१)

विन्ध्येश्वरी को तीर्थ-यात्रा का बेहद शौक था। बालपन की चंचलता के दिनों में भी उसमें असाधारण श्रद्धा के बीज मौजूद थे। पंडितों के मुंह से देवी-देवताओं के कारनामों की कथा वह बड़े चाव और श्रद्धा के साथ सुना करती थी। वह धनी परिवार की थी, इसलिए प्रायः प्रतिवर्ष ही उसे किसी-न-किसी नए तीर्थ के दर्शन करने का अवसर मिल जाता था। उसका विवाह भी एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। पतिदेवता कालेज की तालीम पाए हुए थे, यद्यपि उन्होंने कोई इम्तहान पास नहीं किया था। उनका नाम रामप्रताप था। औसत दर्जे के धनी आदमियों से न वह किसी दर्जे अच्छे थे और न बुरे। देवी-देवताओं में उन्हें श्रद्धा नहीं थी, मगर कोई विरोध का भाव भी नहीं था। वह युक्त प्रान्त के एक वैभवशाली जमींदार थे। काम-काज या नौकरी-चाकरी की इल्लतें उन्हें नहीं झेलनी पड़ती थीं। अपनी जमींदारी के सम्बन्ध में भी उन्हें बहुत दिलचस्पी नहीं थी। जमींदारी का अधिकांश बोझ खानदान से चले आ रहे एक पुराने कारिन्दे पर था, इसलिए विन्ध्येश्वरी के साथ यात्रा पर जाने की सालभर में उन्हें काफी फुर्सत मिल जाती थी। उनका अपना उद्देश्य तीर्थयात्रा तो न था, मगर किसी तीर्थ पर जाकर पंडों और पुरोहितों को कुछ दान-दक्षिणा दे देने में या नदी अथवा तालाब में दो-एक गोते लगा लेने में उन्हें कोई हानि भी प्रतीत नहीं होती थी। लगे हाथ यदि धर्मराज के बैंक में वह अपने नाम पर कुछ पुण्य की धरोहर भी जमा करवा सकें, तो उनके लिए यह कोई महंगा सौदा तो नहीं है।

विन्ध्येश्वरी और रामप्रताप की घर गिरस्ती की गाड़ी चार-पांच वर्षों से चक्कर काट रही है। यह कहा जा सकता है कि दोनों का जीवन सुखी है। पति-पत्नी में प्रेम है। घर में नौकर-चाकर, रुपया-पैसा किसी चीज की कमी नहीं है। एक सन्तान भी है। वह कन्या है। विन्ध्येश्वरी और रामप्रताप को उससे असीम स्नेह है। इस कन्या का नाम नीरा है। उसने अभी तक तीसरा वर्ष भी समाप्त नहीं किया।

इस वर्ष विन्ध्येश्वरी ने नीरा का मुण्डन-संस्कार करने का निश्चय किया। विन्ध्येश्वरी चाहती थी कि नीरा के पहली बार काटे गए बालों को वह अमरनाथ की दैवीय गुफा के समीप वाले तालाब में विसर्जित करे। बस, पति-पत्नी मे इस बात पर सलाह-मशविरा हुआ, और अगस्त के अन्त मे रामप्रताप और विन्ध्येश्वरी, नीरा और उसकी धाय को साथ लेकर, अमरनाथ-बाबा के दर्शनों के लिए रवाना हो गए।

अब के बरसात ज़ोरों पर थी। काश्मीर की सुन्दर घाटी के नदी-नाले सब बेतरह बढ़े हुए थे। इससे श्रीनगर पहुँच कर मप्रताप को अमरनाथ की यात्रा शंकारहित न जान पड़ी। दुर्भाग्य से उनका अपना स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। उन्होंने विन्ध्येश्वरी को सलाह दी कि इस वर्ष अमरनाथ की यात्रा स्थगित कर दी जाए। मगर वह इस बात को कब मानने वाली थी। पति के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी वह नीरा, उसकी धाय तथा एक नौकर को अपने साथ लेकर अमरनाथ की यात्रा के लिए रवाना हो गई। सिर्फ ५ ही दिन की तो बात थी। अन्य हज़ारों यात्रियों के साथ अमरनाथ बाबा के दर्शन कर वह ५ ही दिनों में तो लौट आएगी। श्रीनगर के एक अच्छे होटल मे रहकर रामप्रताप पत्नी और पुत्री से वापस लौटने का इन्तज़ार करने लगे।

अमरनाथ की यात्रा प्रारम्भ होने के तीसरे ही दिन वर्षा ने और अधिक जोर पकड़ लिया। दिन-रात की मूसलाधार वर्षा शुरू हुई। रामप्रताप की चिन्ता का पारावार न रहा। फिर भी उन्होंने सोचा कि विन्ध्येश्वरी के साथ और भी तो हज़ारों आदमी हैं।

जिस किसी तरह ५ दिन बीत गए और वर्षा नहीं थमी। दिन भर रामप्रताप पत्नी की प्रतीक्षा में रहे, परन्तु वह नहीं लौटी और न उसका कोई समाचार ही मिला। उसी रात एक हरकारा पहलगाँव से श्रीनगर वापस आया और उसके घण्टे भर बाद ही सारा श्रीनगर जाग गया। हरकारे ने समाचार दिया कि भयंकर बाढ़ आ जाने से अमरनाथ के सैंकड़ों यात्री डूब गए हैं! रामप्रताप के होश-हवास जाते रहे। वह उसी राह १०-१२

मजदूरों को लेकर घटनास्थल की ओर रवाना हो गए।

अमरनाथ की गुफा से सिर्फ अठाईस मील नीचे, पहलगाँव में पहुँचकर रामप्रताप का विन्ध्येश्वरी से तो साक्षात् हो गया। मगर वह अपनी प्यारी पुत्री का मुँह न देख सके।

[२]

सितम्बर महीने की एक साँझ का समय था। आज दिनभर से आस्मान में बादल घिर रहे थे। पिछले दिनों बहुत अधिक वर्षा होते रहने के कारण काश्मीर में सर्दी बहुत अधिक बढ़ गई थी। बूढ़ा हसना सिकुड़कर चुपचाप अपनी जगह बैठा था। उसे सरदी सता रही थी, मगर सर्दी से बचने का उसके पास कोई साधन नहीं था। इसी समय बिजली की एक प्रबल रेखा आस्मान भर में इस तरह घूम गई, जैसे भगवान ने किसी बड़े ब्लैकबोर्ड पर चाक से लिखकर देखने का परीक्षण किया हो। इसके अगले ही क्षण बादल बड़े जोर से गरज उठा, और वह सुन्दर घाटी बादल की उस गम्भीर आवाज़ से प्रतिध्वनित होकर और भी अधिक सन्नाटा थाम कर बैठ गई। फकीर ने लक्षणों से समझ लिया कि शीघ्र ही भयंकर वर्षा होने वाली है। उसने अपनी लाठी सम्हाली, अपना भीख माँगने का टूटा हुआ गोल-मोल और काला बरतन उठाया, और अपनी जगह से सरकना शुरू किया। सड़क से दस-पन्द्रह गज़ परे हटकर चिनार के बहुत-से तनों के बीचोंबीच एक झोपड़ी थी। झोपड़ी क्या थी, जरा-सा फूस-फाँस डालकर एक आदमी के लेट रहने लायक जगह बना ली गई थी। इसी ज़रा-सी झोपड़ी में एक तरफ एक हंडिया और कुछ लकड़ियाँ रक्खीं थी। छत के बाँस से एक थैला भी लटक रहा था, इसमें पचमेल अनाज भरा हुआ था। बिस्तरे के नाम पर कुछ लोगड़ और चीथड़े भी एक कोने में पड़े थे। झोंपड़ी का मुँह दो बल्लियों को क्रॉस के रूप में रखकर बन्द किया गया था। फकीर ने धीरे-धीरे इन बल्लियों को हटाया और फिर वह अन्दर दाखिल हो गया। दिया-सलाई जलाकर उसने आग सुलगाई और अपने बढ़िया से बिस्तरे पर बैठकर आग सेंकने लगा। इस समय तक बाहर बड़े जोर से वर्षा शुरू हो चुकी थी।

वर्षा क्या थी, नूह का तूफान था। आस्मान में बिजली चमकती थी। बादल गरज-गरज कर पहाड़ों को चैलेंज देते थे, और पहाड़ों की चोटियां और भी अधिक गम्भीरताभरी प्रतिध्वनि द्वारा बादलों की उस ललकार को स्वीकार करती थीं। वर्षा पड़ने की आवाज़ ज़ोर-ज़ोर से आ रही थी। साथ ही आँधी भी चल रही थी। मालूम होता था कि सब-कुछ उलट-पुलट हो जाएगा। गनीमत इतनी ही थी कि फकीर की झोंपड़ी बड़े-बड़े वृक्षों की ओट के कारण इतनी सुरक्षित थी कि उसके उड़ जाने का भय नहीं था।

फकीर ने अब भोजन बनाने का इरादा मुल्तवी कर दिया। इस अंधड़ में कौन पकाए और कौन खाए। लकड़ियों के जब अंगारे बन गए, तो बुड्ढे ने उनसे अपनी काँगड़ी[1] भरी और लेट कर सुस्ताने लगा।

इसी समय फकीर को सड़क पर से किसी बच्चे के चीखने की आवाज़ सुनाई दी। वर्षा पड़ने की ऊँची आवाज़ के कारण यह चीख बहुत स्पष्ट नहीं थी, फिर भी उसमें अत्यधिक भयपूर्ण करुणा उत्पन्न करने की पूरी शक्ति विद्यमान थी। यह चिल्लाहट करीब-करीब उसी जगह से आ रही है, जहाँ वर्षों से बैठा रहकर वह राहगीरों से भीख माँगा करता है। फकीर चौंक पड़ा। वह नेकचलन और रहमदिल था। उसने इस बात की परवाह नहीं की कि उस पर भी कोई आफत आ सकती है। वह उठा, और उसने अपनी लकड़ी संभाली। अभी रात का-सा पूरा अंधेरा नहीं हुआ था। काले-काले बादलों ने सितम्बर महीने के इस सायंकाल को रात के समान अवश्य बना रखा था, मगर अभी तक कुछ भी दिखाई न देने की नौबत नहीं आई थी।

सड़क के निकट पहुँच कर उसने देखा कि दो गेरुआधारी साधु सड़क के किनारे एक छोटे-से बच्चे के कान खींच रहे हैं। निकट पहुँच कर इसने एक बार बड़े जोर से खुदा का नाम लिया, और इसके बाद अस्पष्ट काश्मीरी

---

१. मिट्टी का एक काश्मीरी बर्तन, जिसमें आग भर कर काश्मीरी लोग उसे अपने कपड़ों के अन्दर कर लेते हैं।

भाषा में वह इस तरह चिल्लाने लगा, जैसे वह किसी को बुला रहा हो। दोनों गेरुआधारी हसना को इस तरह चिल्लाता हुआ देखकर भयभीत हो गए और उस बच्चे को वहीं छोड़कर भाग गए। बूढ़ा फकीर दाएँ हाथ मे लाठी को मजबूती से थामकर सड़क पर उतरा। उसने निकट आकर देखा कि बच्चा तीन-चार वर्ष की एक बहुत ही सुन्दर बालिका है।

बालिका अभी तक उसी तरह ऊँची आवाज़ मे रो रही थी। फकीर ने पुचकार कर उसे अपनी गोद मे उठा लिया, और अपनी झोंपड़ी की तरफ़ ले चला। उसने देखा कि वर्षा के कारण कन्या के सब कपड़े बिल्कुल गीले हो गए हैं, और वह सर्दी के मारे कांप रही है। शीघ्रता से उसे झोंपड़ी मे ले जाकर फकीर ने उसके गीले कपड़े उतार दिए और उन्हे निचोड़ कर एक तरफ़ डाल दिया। फिर उसने अपने फटे हुए कम्बल से बालिका को अच्छी तरह ढॅक दिया। बालिका के कानों से कुछ खून बह रहा था। बूढ़े ने अनुमान किया कि लुटेरे इन कान के आभूषणों के लोभ मे ही इस कन्या को कहीं से उड़ा लाए हैं।

बालिका का रोना तो अब बन्द हो चुका था, परन्तु उसका चेहरा अब भी बहुत उदास था। उसका स्वरूप इतना अधिक सुन्दर था कि उसे देखते ही प्यार करने की इच्छा होती थी। उसकी आँखे खास-तौर से सुन्दर थीं। परन्तु मालूम होता था कि वह बहुत दिनों से बहुत अधिक रोती रही है। फकीर की पुचकार के प्रभाव से रोना बन्द कर वह बड़े भय के साथ-साथ उस गरीब फकीर की अंधकारमय झोंपड़ी को देखने लगी।

बालिका की इस दुखभरी दृष्टि ने फ़कीर के दिल को पिघला दिया। एक ठंडी साँस लेकर वह उठ खड़ा हुआ। बालिका न जाने कब की भूखी है, इस विचार ने उसे बेचैन बना दिया। फकीर ने अपनी हंडिया चूल्हे पर चढ़ा दी। गुथली में से ताजी मक्का के दाने छाँट-छाँट कर उसमें डाल दिए। फिर गुथली की तह में से जरा-सा गुड़ निकाला। थोड़ी सी देर मे बालिका के लिए बिना घी का गुड़ मिला मीठा भात तैयार हो गया। फकीर के पास कुछ पैसे भी थे, मगर इस आँधी और वर्षा के समय बालिका

को उस अंधेरे स्थान पर अकेला छोड़ कर मील भर दूर की दुकान पर जाना उसे निरापद प्रतीत नहीं हुआ।

बालिका सचमुच बहुत भूखी थी। स्वाद से या बिना स्वाद के उसने यह भात खाया। बूढ़ा उसे स्वयं अपने हाथ से यह भोजन करा रहा था।

सहसा बड़े जोर से बिजली चमकी। इस समय तक सब ओर घना अन्धकार व्याप्त हो चुका था। बिजली के तेज़ प्रकाश मे क्षणभर के लिए सभी कुछ जैसे जगमगा उठा। बालिका यह देखकर ख़ुश हो गई। बड़ी ही मधुर और अबोध मुस्कराहट के साथ कुटिया के बाहर की तरफ़ उँगली उठाकर वह बोली--"बिट्टी!"

मालूम नहीं कि बूढ़े फकीर ने कभी ब्याह भी किया था या नहीं, अथवा कभी उसकी कोई सन्तान भी रही थी या नहीं। परन्तु इतना जरूर मालूम है कि उसके अब तक के जीवन मे बच्चे उसके लिए आफ़त के पुतले बने रहे थे। यह बूढ़ा फकीर आस-पास के किसान बालकों के उपद्रवों से बरी नहीं था। कभी कोई बच्चा उसकी लाठी छीनकर ले जाता था और कभी कोई उसपर कंकड़ी फेंकता था। कभी-कभी बच्चे एक साथ मिलकर उसे चिढ़ाया करते थे--"बुड्ढा! बुड्ढा!!" परन्तु आज एक अबोध और सुन्दरतम बालिका को बिल्कुल अपनी दृष्टि से देखने का अवसर उसे पहली बार मिला। बूढ़ा फकीर वात्सल्य प्रेम के इस अनोखे आनन्द में मग्न हो गया।

[३]

बूढ़े फकीर ने बहुत सोच-विचार कर इस बालिका का नाम रक्खा 'गुलाब'। बूढ़े को मालूम नहीं था कि गुलाब शब्द पुल्लिग है या स्त्रीलिंग। यह शब्द चाहे किसी भी लिंग का क्यों न हो, परन्तु बूढ़े हसना को सुन्दरतम फूल के समान इस बालिका के लिए गुलाब से बढ़कर कोई उपयुक्त नाम नहीं सूझा।

हसना के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आ गया। उसे अनुभव हुआ कि गुलाब किसी बहुत बड़े घराने की कन्या है, और उसे मैले रहने की आदत नहीं है। उसने साबुन खरीदकर अपना कम्बल और एक फटी हुई चादर को

धो डाला। अपने जीवन भर के परिश्रम से उसने जो थोड़े-बहुत रुपए जमा किए थे, उन्हें अब वर्षों के बाद हवा लगने लगी। बालिका के पैर नंगे थे, उन्हें इन रुपयों के प्रताप मे ढाँक दिया गया। उसके लिए अब गाय का शुद्ध घी और दूध खरीदा जाने लगा। बूढ़े ने स्वयं भी अब कुछ साफ़ रहना शुरु किया।

फकीर का काम अब भी भीख माँगना ही है। वह प्रतिदिन अपने उसी स्थान पर बैठकर भीख माँगता है। मगर अब वह अपना पेशा पहले की तरह निष्काम भाव से नहीं करता। अब वह सभी राहगीरों के सामने बहुत अधिक गिड़गिड़ाता है। इसके लिए अनेक बार वह उठ भी खड़ा होता है, और कभी-कभी तो तेज भागती हुई लारियों के पीछे दौड़ने का व्यर्थ प्रयास भी करता है। उसके इतना प्रयत्न करने पर भी जब अनेक राहगीर उसे कुछ नहीं देते, बल्कि उस पर नाराज होते हैं, तो भी वह उन्हें दुआएँ तो देता है, मगर ये मुफ्त की दुआएँ देते हुए अब उसे कोई उत्साहपूर्ण प्रसन्नता अनुभव नहीं होती। हसना जिस स्थान पर बैठकर भीख माँगता है, उससे थोड़ी ही दूरी पर ऊँचे और मखमली घास से मढ़े हुए एक स्थान पर बैठकर वह देवदुर्लभ रूप की बालिका अपने में मस्त होकर खेला करती है। बूढ़े ने उसे दो-तीन लकड़ी के मामूली से खिलौने खरीद दिए थे। वह उन्हीं में मस्त रहती है। बीच-बीच मे अपना खेल बन्द कर वह सड़क पर तेजी से आती-जाती बसों की तरफ़ आँख उठाकर देख भी लेती है, मगर आश्चर्य यह है कि उस ज़रा-सी बालिका के लिए मोटर कार कोई विशेष कौतूहल की चीज़ नहीं मालूम होती।

गुलाब बहुत कम बोलती है। वह रोती भी नहीं है। बूढ़ा फकीर हर समय उसे अपनी नज़र में रखता है। उसके दिल में इस नन्ही-सी बालिका ने एक नया स्रोत खोल दिया है। बीसियों सालों से जो दुनिया उसकी आँखों में बिल्कुल घिस चुकी थी, वह अब फिर से उसे नए रूप में दिखाई देने लगी है। यदि कभी खेलते-खेलते बालिका थोड़ा-सा इधर-उधर हटकर एक मिनट के लिए भी किसी चट्टान की ओट में हो जाती, तो बूढ़े हसने का दिल

काँप जाता। वह चटपट उठ खड़ा होता और गुलाब को ढूँढ़कर अपनी गोद मे उठा लेता।

नन्ही गुलाब ने भी हसना का एक नाम रख छोड़ा था। जब कभी वह बहुत प्रसन्न होती, तो अपनी तोतली आवाज़ में हसने को बार-बार बुलाया करती--"बुड्ढा!"

हसना इसे सुनता और खुशी मे मस्त हो जाता।

[४]

एक दिन गुलाब, न जाने क्यों, सहसा मचल पड़ी। दोपहर का समय था। सर्दी का मौसम अब ज़ोरों पर था, इस कारण इस वक्त की धूप बहुत ही मज़ेदार मालूम होती थी। इसी समय एक अंग्रेज़ बच्चे को गाड़ी में बिठा कर ले जाती हुई एक हिन्दुस्तानी आया उसी सड़क पर से गुज़री। उसके पीछे एक अंग्रेज़ दम्पति भी थे। वे लोग इस ओर सैर के उद्देश्य से आए होंगे। उन्हे देख कर हसना ने सलाम कर भीख माँगी। गुलाब अपने खेल मे मस्त थी। वह हसना से कुछ ही ऊँचाई पर सड़क के साथ लगे हुए एक हरे-भरे टीले के ढलान की एक चट्टान पर बैठी थी। अचानक अंग्रेज़ महिला की दृष्टि इस बालिका पर पड़ी। उसने हिन्दुस्तानी मे हसन से पूछा--"यह किसकी लड़की है?"

गुलाब का परिचय लोगों को देना हसना को भला नहीं मालूम होता था। फिर भी मेम साहब के सवाल का इसके अतिरिक्त और वह कोई और उत्तर न दे सका कि यह मेरी लड़की है।

अंग्रेज सज्जन ने आश्चर्य के साथ गुलाब की तरफ देखकर अपनी पत्नी से अंग्रेज़ी में कहा--"काश्मीर के बच्चे सचमुच बहुत सुन्दर होते है।"

इसके साथ ही बूढ़े के आगे एक रुपया फेक कर वे दोनों आगे निकल गए। इसी समय गुलाब की नज़र बच्चे की गाड़ी पर पड़ी। बालिका सहसा खुश हो गई। वह दोनों हाथ एक साथ उठाकर कहने लगी--"आः, आः, गाड़ी। आः, आः, गाड़ी।"

मगर अब गाड़ी तो क्रमशः बालिका से दूर होने लगी। उसे अपनी पहुँच

से दूर होते देख बालिका सहसा मचल पड़ी। रोनी सूरत बनाकर वह कहने लगी--"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी ! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी ! !"

शायद इस बालिका की भी कभी कोई ऐसी ही गाड़ी रही होगी और इस गाड़ी को देखकर उसे अपनी गाड़ी का ध्यान हो आया होगा। बेचारा हसन बड़ी पसोपेश में पड़ा। उससे जब और कुछ न बन पड़ा, तो उसने बालिका को गोद में उठा कर पुचकारना शुरू किया। मगर वह न मानी। गुलाब के रोने का वेग कम न हुआ। वह रह-रह कर कह उठती थी--"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी ! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी !"

पंचतन्त्र में एक कहानी आती है कि एक बार एक शेर का बच्चा भूल से भेड़ों के झुण्ड मे जा मिला था। भेड़ों में रहकर वह भी अपने को भेड़ ही समझने लगा था। परन्तु एक दिन दूर पर एक शेर की गरज सुन कर वह पुलकित हो उठा। उसकी अन्तरात्मा अचानक कह उठी--"तू भी तो शेर है !" बस, वह उसी समय शेर बन गया। शायद आज गुलाब को वैसे ही अपने अतीत जीवन की स्मृति हो गई। वह तो किसी भिखारी की कन्या नहीं है। उसके पास भी तो एक अपनी गाड़ी थी ! उसकी वह गाड़ी गई कहाँ ?--"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी ! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी !"

हसना उस दिन और भीख न माँग सका। गुलाब को गोद में लेकर वह अपनी झोंपड़ी में चला आया। बालिका को फुसलाने के लिए उसने बड़े प्रयत्न से हलुआ तैयार किया। अपनी लड़खड़ाती हुई आवाज को मेहनत से साधकर गीत गाए। जंगली फूलों की बेलों से फूल बीन कर सुन्दर गुलदस्ता तैयार किया। मगर आश्चर्य यह कि गुलाब अब भी प्रसन्न न हुई। वह उसी तरह मचल रही थी--"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी ! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी !"

हसना भिखमंगा था। उसकी गरीबी बताने के लिए इससे बढ़कर नंगा प्रमाण देने की और क्या आवश्यकता है ? आज गुलाब की इस जिद को देखकर उसे अपने जीवन में पहली बार अपनी गरीबी पर दुख हुआ। यह दुख बहुत अधिक तीव्र था। इतना अधिक तीव्र कि उसकी तेजी को हृदय सह नहीं सकता। बूढ़े हसने ने एक ठण्डी साँस लेकर अपने परवरदिगार

खुदा का नाम लिया और इसके बाद उसने अपनी झोंपड़ी का एक कोना खोदना शुरू किया। तीन फीट गहरा खोद चुकने पर उसमे से चाँदी के कुछ रुपए निकले। ये संख्या में ३६ थे। अभागे हसना की सम्पूर्ण जवानी भर की यही कमाई थी। रुपए बिल्कुल काले पड़ चुके थे। हसना ने एक गहरी साँस लेकर इन रुपयों को रगड़ना शुरू किया। थोड़ी ही देर मे वे चमचमा उठे। इसके बाद वह उठा। गढ़े को पूरी तरह भर कर उसने कुटिया का द्वार बन्द कर दिया और गुलाब को अपनी गोद मे उठाकर वह श्रीनगर के लिए रवाना हो गया।

बालिका का रोना अब बन्द हो चुका था। मुमकिन है कि उसे गाड़ी की याद भूल चुकी हो। परन्तु उसका चेहरा अब भी बहुत उदास था। गुलाब का यह उदास चेहरा हसन के नरम हृदय को मथ रहा था। काश कि गुलाब एक बार फिर उसी भोली-भाली आवाज़ मे मुसकरा तो दे। उसकी एक मुस्कराहट के लिए बूढ़ा फकीर अब सब कुछ करने को तैयार था।

बाजार मे पहुँच कर हसना ने एक गाड़ी खरीदी। चौंतीस रुपए छः आने में उसे एक सैकण्ड हैण्ड, परन्तु बढ़िया गाड़ी मिल गई। हसना का दिल खुश हो गया। इतना प्रसन्न वह जन्मभर मे कभी न हुआ होगा। उसके पास अब सिर्फ एक रुपया दस आने ही बाकी बचे थे। बूढ़े ने उन्हे भी खर्च कर दिया। इनमे उसने गुलाब के लिए खिलौने खरीद लिए।

इस नई गाड़ी पर बैठकर गुलाब खुश हो गई, और हसन की तरफ देखकर एकबार उसने बहुत ही मधुर आवाज से पुकारा—"बुड्ढा!" इस समय गुलाब सचमुच एक देव-कन्या के समान प्रतीत होती थी। अपने दोनों हाथों को उसने छाती तक उठा रखा था, उनमें वह दो पुतलियाँ सम्हाले हुई थी। उसके चेहरे पर एक सरल मुसकराहट व्याप्त थी।

बूढ़े का दिल नाच उठा। दुनिया में इससे बढ़कर भी कोई प्रसन्नता हो सकती है, यह उसकी कल्पना से भी परे की बात थी। बूढ़ा हसना लड़खड़ाती हुई टाँगों से दौड़-दौड़ कर स्वयं वह गाड़ी खींचने लगा।

बाज़ार से निकल कर वह अमीरा कदल पहुँचा। सड़क वहाँ से नदी

के किनारे किनारे घूमती है। इसी सड़क पर गाड़ी को तेजी से दौड़ाता हुआ बूढ़ा शहर के बाहर आ पहुँचा। गुलाब की यह गाड़ी जब हज़ूरी बाग के पास मे मुड़कर जेहलम के किनारे पहुँची, तब एक मोटर उस के पास से गुजरी। गुलाब की नजर मोटर की तरफ़ थी। मोटर बहुत ही मामूली चाल से आ रही थी। अचानक गुलाब मोटर मे बैठे हुए सज्जन की तरफ़ देखकर जोर से चिल्ला उठी--"पप्पा!"

मोटर का मालिक यह आवाज़ सुनकर पहले तो चौंका और उसके बाद बड़ी शीघ्रता से मोटर से नीचे उतर कर उसने गुलाब को अपनी गोद मे उठा लिया। उसे अपनी छाती के साथ जोर से चिपका कर वह गद्गद स्वर मे बोला--"मेरी नीरा!"

बूढ़ा हसना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। वह अब भी गाड़ी के मुट्ठे को पकड़ कर निश्चल भाव से खड़ा था। इसी समय रामप्रताप अपनी कन्या को लेकर मोटर मे सवार हो गया। गुलाब के दोनों हाथों मे अभी तक गटापर्चे की वे पुतलियाँ थमी हुई थीं। मोटर मे बैठकर हसना की तरफ़ देखकर वह फिर से मुस्करा दी। शायद अबोध बालिका उसे अपने पिता का परिचय देना चाहती थी।

रामप्रताप का ध्यान भी अब बूढ़े की तरफ आकृष्ट हुआ। उसने पूछा--"तुम्हारा घर कहाँ है?"

बेचारे फकीर के मुँह से आवाज़ नहीं निकली। इस तरह अचानक अपनी प्यारी पुत्री को पाकर रामप्रताप शीघ्रता से घर पहुँचने के लिए बेचैन हो उठे थे। विन्ध्येश्वरी मोटर मे नहीं थी। वह अपने होटल में ही थी। उसे इतना बड़ा शुभ समाचार सुनाने की प्रबल उत्सुकता मे नीरा के तीन महीने के अज्ञातवास की आश्चर्यमयी कहानी सुनने का कौतूहल भी रामप्रताप को बूढ़े के पास नहीं रोक सका। शायद उसने [illegible]मान किया हो कि बूढ़ा कहीं आस-पास ही रहता होगा। [illegible] उसका घर पीछे भी मालूम हो जाएगा।

मोटर चल दी और देखते-ही-देखते बूढ़े हसन के [illegible]

साथ सैकड़ों हथौड़ों की कड़ी चोट मारकर वह दूर पर जाकर ओझल हो गई। बूढ़ा हसना अभी तक गुलाब की गाड़ी को उसी तरह पकड़े हुए खड़ा था। इस अचानक हो गए चील झपाटे का मतलब अभी तक उसकी समझ में नहीं आया था। अब मोटर के आँखों से ओझल हो जाने पर उसने अनुभव किया कि "हाय! मुझ अभागे का तो सभी कुछ लुट गया!"

अभागे हसने के दिल से बड़ी दर्दभरी आवाज़ निकली--"उफ़!" इसके साथ ही अपना सिर पकड़ कर वह ज़मीन पर बैठ गया।

[५]

बूढ़ा हसना फिर से अपने रोज के अभ्यस्त स्थान पर लेटा हुआ दिखाई दिया। मालूम नहीं, वह वहाँ पहुँचा किस तरह। अभागा हसना अब भीख नहीं माँगता। अब वह किसके लिए भीख माँगे? जिसके लिए वह बुढ़ापे में पहुँच कर भी फिर से जवान बन गया था, वह तो इतना शीघ्र, जहाँ से आई थी, वहीं चली गई। फिर वह किस के लिए भीख माँगे? अपने लिए? निःसन्देह सारी दुनिया 'अपने लिए' जीती है। मगर अभागे हसना ने मोह से, अज्ञान से अथवा वर्षों तक दिल ही ढके रहने वाले वात्सल्य के अचानक प्रादुर्भाव से जिसे एकदम अपना बना लिया था, वह तो चली गई। फिर उसका अपनापन ही कहाँ रह गया? काश कि वह फिर से इस अपनेपन को संकुचित कर पाता!

हसना दौलत का फकीर तो पहले ही था, अब वह सभी तरह से कंगाल हो गया। अपनी जिन्दगी भर में इस दुनिया को वह जिस नीरस रूप में देखता रहा है, उसकी अपेक्षा तो, एक दिन हसना ने अचानक अनुभव किया कि, यह दुनिया बहुत अधिक हरी और आकर्षक है। परन्तु इतना शीघ्र हसना को यह भी अनुभव हो गया कि दुनिया का यह हरापन कितना अधिक क्षणिक और कितना विमोहक है और इसका परिणाम कितना करुण है।

सर्दियों की तीन लम्बी-लम्बी रातें और तीन छोटे-छोटे दिन निकल गए। हसना ने न कुछ खाया, न कुछ पीया। एक बड़ी-सी चट्टान की ओट में अपने सम्पूर्ण फटे हुए चीथड़ों को लपेट कर वह इस तरह पड़ा था, जैसे

उसमें जीवन ही शेष न रहा हो। यह चट्टान हवा के झोकों वे उसकी रक्षा करती थी, और वृक्ष उसे ओस से बचाते थे। अब वह इतना दुर्बल हो गया था कि सड़क से झोंपड़ी तक आना-जाना भी उसके लिए दूभर हो गया था। बूढ़ा हसना चुपचाप लेटा हुआ था। उसके ऊपर जो चट्टान थी, उसी पर बैठ कर आज से सिर्फ तीन ही दिन पहले उसकी सुन्दर गुलाब मचल उठी थी--"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!" आज हसना गुलाब के लिए गाड़ी तो खरीद लाया है, और वह गाड़ी उसके पास ही खड़ी है, मगर इस गाड़ी के बदले में वह अपनी गुलाब को खो आया है। अब बूढ़े के मचलने की बारी है। मगर उसके मचलने की परवाह ही कौन करता है!--ओफ, उस अभागे की गुलाब कहाँ गई?

तीसरे दिन आस्मान में फिर से बादल घिर आए। रात होने से कुछ ही समय पहले भयंकर वर्षा होने लगी।

कभी तुमने इस निष्प्राण प्रकृति को रोते हुए भी देखा है? सचमुच कभी-कभी यह प्रकृति रोती है और इसका रोना बहुत करुण होता है। जब यह रोने लगती है, तो सारा जगत सन्नाटा थाम लेता है। जीव-जन्तु सब चुप हो जाते हैं, पेड़-पत्ते निश्चल हो कर खड़े हो जाते हैं, कभी-कभी तो हवा भी दम साध लेती है, और तब बिना किसी बाधा के यह प्रकृति घण्टों तक साँय-साँय करके रोती है। यदि कभी बरसात की किसी गीली रात में नींद से जग कर तुमने प्रकृति का यह महान रुदन सुना है, तो अवश्य ही तुमने देखा होगा कि प्रकृति के उस रुदन मे सब कहीं गहरा सन्नाटा छाया रहता है, यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी नहीं बोलते। और सब को चुप कर सिर्फ़ यह निष्प्राण प्रकृति एक-सी आवाज़ में टप-टप आँसू टपकाती है।

आज बूढ़े हसना के साथ प्रकृति भी रोई और खूब जी भर कर रोई। बूढ़े को इस समय तक ज्वर चढ़ आया था। आस्मान से पानी के साथ-साथ बरफ़ भी पड़ने लगी थी, और इधर अभागा हसना बुखार की गरमी में उनींदा-सा होकर बड़बड़ा रहा था। बूढ़ा ख्वाब देखने लगा--"उसकी गुलाब एकदम बड़ी हो गई है और उसका ब्याह हो गया है। आहा, हसना

की गुलाब का ब्याह हो गया है और उसका पति इतना धनी है कि उसके पास कई मोटरें हैं !"

मगर बूढ़े को स्वप्न में भी देर तक यह खुशी नसीब नहीं हुई। उसका ख्वाब जारी था--"गुलाब को ससुराल गए बहुत दिन बीत गए हैं। जब से वह ससुराल गई है, कभी लौट कर नहीं आई। बूढ़े ने उसे वापस लाने के लिए गाड़ी खरीदी है। मगर गुलाब की ससुराल वाले उसे लौटने नहीं देते।"

बुखार की बेचैनी मे हसन ने जो करवट बदली, तो उसका हाथ गुलाब की गाड़ी से जा टकराया। बूढ़े की नींद उचट गई। वह बड़े कातर स्वर मे बड़बड़ाया--"गुलाब ! मेरी गुलाब !!"

वर्षा अभी तक ज़ोरों पर थी। सड़क का पानी फैल कर चट्टान के पास आ रहा था। हसन ने अनुभव किया कि उसके कपड़े गीले हो रहे हैं। चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ था। हसना सिकुड़ कर चट्टान से लग गया। चट्टान का सिरा आगे की तरफ़ बढ़ा हुआ था, इसलिए वर्षा से उसकी थोड़ी-बहुत रक्षा हो गई। वर्षा पड़ने की यक-साँ आवाज़ ने माता की प्यारभरी लोरियों के समान उसे पुनः अर्धसुप्त दशा में कर दिया। वह फिर से ख्वाब देखने लगा--"गुलाब अपनी ससुराल मे उसे बहुत याद करती है। मगर ससुराल वाले उसे बाप के घर जाने नहीं देते। उन्होंने गुलाब की गाड़ी को खाली ही वापस लौटा दिया है, और कहला भेजा है कि हम गुलाब को एक फकीर के घर नहीं भेज सकते !" हसना फिर से जाग उठा। उसे ध्यान आया कि वह तो सचमुच फकीर है। उसके मुँह से एक गरम साँस निकली और अब के वह बिल्कुल धीरे से गुनगुनाया--"गुलाब ! मेरी गुलाब !"

बुढ़े फकीर का बुखार बढ़ने लगा। मगर उसे देखने वाला वहाँ कोई नहीं था।

[६]

क्रमशः यह गीली रात समाप्त हुई। सूर्योदय के साथ ही साथ वर्षा

भी रुक गई। परन्तु सरदी बहुत अधिक बढ़ गई थी और साथ ही-साथ अभागे हसन का बुखार भी बढ़ रहा था। तेज बुखार की बेहोशी मे वह रह-रह कर कराहने लगा था।

सर्दियों के मौसम मे इस सड़क पर बहुत आवागमन नहीं होता। फिर भी सड़क पर से जो दो-चार काश्मीरी किसान गुज़रते थे, उनका ध्यान इस अभागे फकीर की तरफ़ अवश्य जाता था। कुछ किसानों ने कौतूहल-वश उसे घेर भी रक्खा था।

दोपहर होने से कुछ समय पूर्व श्रीनगर की तरफ से एक मोटर आकर इसी स्थान पर रुक गई। इसमें से नीरा को साथ लिए हुए विन्ध्येश्वरी और रामप्रताप नीचे उतर पड़े। दूर ही से गुलाब ने उंगली उठाकर अपनी माँ को दिखाया--"मेरी गाड़ी वो है।"

अभागा हसना तो चीथड़ों के ढेर के अन्दर छिपा हुआ था। गुलाब बेचारी उसे कैसे देख पाती। इन साहब लोगों को देखकर सब काश्मीरी किसान सलाम करके एक तरफ़ हट गए। रामप्रताप उस बूढ़े फकीर को कुछ पुरस्कार देने की इच्छा ही से नीरा की मदद से यहाँ पहुँच सके थे, मगर यहाँ के आसार देखकर फकीर के लिए उसका हृदय चिन्तित हो गया।

तीनों जने बीमार हसना के निकट पहुँचे। रामप्रताप ने पास ही खड़े हुए एक काश्मीरी किसान से पूछा--"क्यों, क्या बात है?"

उसने जवाब दिया--"कुछ नहीं हुजूर! एक फ़कीर था। सरदी लगने से बीमार हो गया है।"

रामप्रताप के कुछ और पूछने से पूर्व ही नीरा की निगाह बूढ़े हसना पर पड़ गई। वह खुशी से भर कर चिल्लाई--"बुड्ढा!" और इसके साथ ही अपनी माँ का अंचल पकड़कर वह उसे हसना के बहुत निकट चलने के लिए खींचने लगी।

इस बेचैनी की दशा में भी हसना ने मानो गुलाब की आवाज़ सुन ली। उसने अपनी आँखें खोल दीं। गुलाब को देखते ही उसके मृतप्राय शरीर में प्रसन्नता की बिजली-सी घूम गई। वह धीरे-से कुछ बोला, परन्तु किसी को

कुछ समझ न आया। गुलाब अब उसके बहुत निकट आ गई थी। अपने "बुड्ढे" को इस दशा मे देखकर बालिका का अबोध हृदय भी सहम गया। वह उदास-सा चेहरा बनाकर हसन के बुझते हुए दीपक-से चेहरे को देखने लगी।

इसी समय निकट आकर रामप्रताप ने हसना से उसका हाल पूछा—मगर हसना ने उनका प्रश्न सुना ही नहीं। दीया बुझ रहा था। उसके लिए तेल आया तो सही, परन्तु बहुत देर में। रामप्रताप और विन्ध्येश्वरी ने देखा कि बूढ़ा नींद मे ही कुछ गुनगुना रहा है। इस गुनगुनाहट मे भी 'गुलाब' का शब्द उन्हे स्पष्ट रूप मे सुनाई पड़ा। शायद वह अपने परवरदिगार खुदा से अपनी गुलाब के लिए प्रार्थना कर रहा था। मगर नीरा के माँ-बाप को तो अभी तक यह भी मालूम नहीं था कि 'गुलाब' उनकी कन्या का ही नाम है।

धीरे-धीरे हसना बेहोश हो गया और उसकी यह बेहोशी फिर कभी न टूटी।
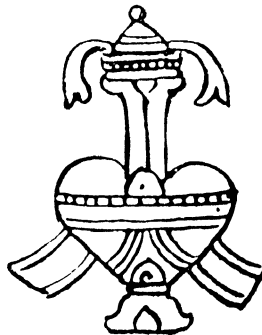
अमीरों का भगवान

आज सुबह राजीव आप-से-आप बहुत जल्द उठ गया था। कल रात माँ ने कहा था कि सुबह जल्दी से तैयार हो जाओगे, तो बाजार चलेंगे। यों आज के प्रभात मे और पिछले दिनों के प्रभातों मे कोई विशेष अन्तर नहीं था, पर आज राजीव को सब ओर उल्लास ही उल्लास दिखाई दे रहा था। आज दीवाली का दिन है। दीवाली, जिसका भारतवासी साल भर इन्तज़ार करते हैं। राजीव को पिछले साल की दीवाली की याद अभी तक है, हालाँकि तब उसने अपनी आयु के ६ साल भी पूरे नहीं किए थे। पहनने को नए-नए कपड़े, खाने को भरपेट मिठाई और रात को दीपकों की कतारें, फुलझड़ियाँ, पटाके और चारों तरफ़ फैली हुई हंसी-खुशी मे तरह-तरह की आतिशबाजी।

पानी मे ठंडक थी, फिर भी राजीव खुद-ब-खुद नल के नीचे जाकर नहा लिया। बहन ने उसे उजले कपड़े पहनाए और सिर के बालों को संवार दिया। तैयार होकर वह माँ के पास आया और बोला--"मुझे नई वास्केट पहना दो माँ।"

आँगन बुहारते हुए माँ ने राजीव को सर से पैर तक देखा और आह्लाद की मुस्कराहट उसके चेहरे पर छा गई। उसने कहा--"इतनी जल्दी काहे की है बेटा?"

"बाजार चलेंगे न माँ।"

माँ ने कहा--"हाँ, हाँ जरूर बाजार चलेंगे मेरे लाल। मगर अभी तो बहुत सबेरा है। और अभी घर के काम-काज भी तो मुझे निबटाने हैं।"

"तो फिर जल्दी करो न माँ।"

"बहुत अच्छा बेटा। शाबास, ज़रा अपने पिताजी को तो कह आओ कि वह भी जल्दी तैयार हो जाएँ।"

बाज़ार चलने से पहले माँ ने कहा--"आज साँझ को घर मे नए भगवान की स्थापना होगी। आओ बेटा, बाज़ार जाने से पहले हम पुराने भगवान की पूजा कर लें।"

राजीव जल्दी बाज़ार जाने को उत्सुक था। परन्तु नए भगवान की बात ने उसके दिल में कौतूहल उत्पन्न कर दिया। वह बोला--"भगवान भी नए और पुराने होते हैं माँ?"

माँ ने कहा--"नए और पुराने तो हम लोग होते हैं बेटा। भगवान तो सदा नया है और साथ-ही-साथ वह सदा पुराना भी है।"

कहते-कहते माँ समझ गई कि राजीव के लिए वह एक पहेली-सी दुरूह बात कह गई है। इससे ज़रा मुस्करा कर उसने कहा--"बेटा, भगवान के बारे में सवाल नहीं किए जाते। उनकी तो पूजा ही की जाती है, चाहे वह किसी भी रूप में हों।"

राजीव के लिए यह सब भी दुरूह था। मगर माँ की बात मान कर उसने और कोई सवाल नहीं किया। पूजा के समय वह बड़े ध्यान से माँ की ओर देखता रहा। माँ किस तरह दीया जलाती है, किस तरह भगवान पर फूल और अक्षत चढ़ाती है, किस तरह भगवान के मस्तक पर रोली से टीका लगाती है और किस तरह घंटी बजाती है। पूजा के अन्त में जब आरती गाई गई, तो राजीव ने भी उसमें भरसक सहयोग दिया।

पूजा के बाद भगवान के प्रसाद स्वरूप बरफ़ी का एक टुकड़ा राजीव के मुँह में देते हुए माँ ने उससे पूछा--"दुनिया में तुम्हें सब से प्यारा कौन लगता है बेटा?"

बरफ़ी खाते-खाते मुँह से कुछ भी न कहकर राजीव अपने दोनों हाथ फैला कर अपनी माँ से लिपट गया। जैसे वह कहना चाहता हो--'यह भी कोई पूछने की बात है माँ?'

माँ ने कहा--"बेटा, तुम्हारी माँ भी भगवान की कृपा से ही ज़िन्दा है। सारी दुनिया भगवान की कृपा से चल रही है। सब रिश्ते टूट जाते हैं, मगर भगवान का रिश्ता नहीं टूटता।" भगवान के सम्बन्ध में और भी न जाने कितनी बातें माँ ने कहीं। पर वे सब बातें जैसे बेकार थीं। जिस भगवान की कृपा पर उसकी माँ का जीवन आश्रित है, उस भगवान की पूजा वह ज़रूर करेगा और पूरी तरह तन्मय होकर करेगा।

बाज़ार में एक हलवाई से मिठाई खरीद कर राजीव का हाथ पकड़े हुए उसकी माँ उसे खिलौनों की एक बड़ी दूकान पर ले गई और उसके पिताजी उसकी बहन को साथ लेकर दीये, आतिशबाज़ियाँ आदि खरीदने दूसरी दूकान पर चले गए। खिलौनों का यह पूरा बाज़ार देखकर राजीव का जी खुश हो गया। इस दूकान पर सबसे नीचे मिट्टी के रंगीन खिलौनों की कतारें थीं, उसके ऊपर लकड़ी के खिलौनों की। ज़रा ऊँचाई पर देसी और विलायती सैलोलाइड के खिलौने रक्खे थे और सब से ऊपर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ सजाई गई थीं।

इतने खिलौने एक साथ देखकर पहले तो बालक राजीव का दिमाग ही चकरा गया। उसके बाद माँ की राय से उसने मिट्टी और लकड़ी के कुछ खिलौने चुने। दूकानदार ने ये खिलौने एक टोकरी में संभाल कर रख दिए। तभी एकाएक बालक राजीव की निगाह सबसे ऊपर पड़ी देवी-देवताओं की मूर्तियों पर गई। वह एकाएक बोल उठा--"माँ, माँ वह देखो भगवान!"

माँ ने कहा—"हाँ बेटा, ये सब भगवान की मूर्तियाँ है। हमें भी इनमें से कुछ मूर्तियाँ लेनी हैं। यही तो नए भगवान हैं।"

दूकानदार मिट्टी की कुछ रंगीन मूर्तियाँ राजीव की माँ को दिखा ही रहा था कि एक बड़ी कार उसकी दूकान के पास आ कर खड़ी हो गई। इस कार में से भव्य वस्त्रों में सजी-सजाई एक महिला और उनकी कन्या नीचे उतरे। दूकानदार का पूरा ध्यान इन नए ग्राहकों की ओर आकृष्ट हो गया। बालक राजीव लक्ष्मी की एक मिट्टी की मूर्त्ति हाथ में लिए-लिए अपने से कुछ

ही बड़ी, पर रहन-सहन मे अपने से एकदम भिन्न उस नवागत लड़की की ओर देख रहा था।

उस भद्र महिला ने जल्दी-जल्दी मे कुछ खिलौने खरीदे, जिन्हे उसका ड्राइवर संभाल-संभाल कर कार मे रखता चला गया। इसी बीच दूकानदार ने एक डिब्बे मे से माँ लक्ष्मी की नकली संगमरमर की एक बड़ी और बहुत सुन्दर मूर्ति बाहर निकाली और भद्र महिला की ओर बढ़ा दी। मूर्त्ति सचमुच बहुत सुन्दर थी और दूकानदार के सभी ग्राहकों का ध्यान बरबस उसी की ओर आकृष्ट हो गया। मूर्ति भारी भी जरूर रही होगी, क्योंकि उस भद्र महिला ने बहुत शीघ्र उसे दूकान के एक फट्टे की खाली जगह पर रख दिया।

बालक राजीव इस जगह के पास ही खड़ा था। माँ लक्ष्मी की यह भव्य मूर्ति देख कर वह बड़े उल्लास के साथ चिल्ला उठा--"माँ, माँ, यह देखो, कितने सुन्दर भगवान !" और साथ-ही-साथ उसने वह भारी मूर्ति एकाएक उठा ली। पूरी शक्ति लगा कर राजीव ने इस मूर्ति को अपने अंक मे भर लिया और कहा--"माँ, हम तो यही भगवान लेंगे !"

इससे पहले कि राजीव की माँ उससे कुछ भी कहे, स्वच्छ वस्त्रों वाली उस महिला ने झपट कर लक्ष्मी की वह मूर्ति बालक राजीव के हाथों से छीन ली, और साथ ही क्रोध भरे स्वर में कहा--"बदतमीज़ कहीं का !"

बेचारा राजीव सन्न-सा रह गया। 'बदतमीज़' का मतलब तो वह नहीं समझा, पर वह इतना जरूर समझ गया कि न सिर्फ़ वह महिला और दूकानदार ही, बल्कि उससे ज़रा-सी बड़ी उम्र की वह लड़की भी उसे बड़ी नाराजगी के साथ देख रहे है।

हतप्रभ-सा राजीव दो-चार क्षणों तक बड़ी आकुल दृष्टि से अपनी माँ की ओर देखता रहा। परन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी उसे किसी तरह की प्रतिरक्षा नहीं दे पाई, तो उसकी रुलाई फूट निकली। राजीव की माँ ने अपने बेटे को छाती से लगा कर उस महिला से इतना ही कहा--"त्यौहार के दिन आप बच्चे से इस तरह न छीन कर मुझसे भी तो कह सकती

थीं।"

इस पर उक्त महिला ने बड़ी अवज्ञा के साथ उत्तर दिया--"यह चिट देखती हो? पचास रुपयों की यह मूर्त्ति है। पूरे पचास की! तुम्हारा लाल अगर इसे तोड़ देता, तो तुम भरती इसकी कीमत?"

कुछ भी जवाब दिए बिना राजीव की माँ राजीव को साथ लेकर उस दूकान से हट गई। राजीव अब भी सहमा हुआ था और धीरे-धीरे सिसकियाँ भर रहा था। माँ ने उसे पुचकारा और कहा--"इस तरह दीवाली के दिन नहीं रोते पगले! भगवान तो सभी जगह हैं। हम गरीबों के लिए संगमरमर का भगवान नहीं है। हमारे लिए तो मिट्टी का भगवान है।"

राजीव का जी खुश करने के लिए उसकी माँ ने उसे और भी कितनी ही चीजें खरीद कर दीं। साथ ही उसने माँ लक्ष्मी की पीतल की एक बहुत छोटी-सी मूर्त्ति भी राजीव को खरीद कर दी और कहा--"ले बेटा, यह है तेरे भगवान्!"

राजीव खुश हो गया और उसने वह छोटी सी मूर्ति अपनी छाती से लगा ली।

उसके बाद दीवाली का शेष दिन राजीव ने बहुत हंसी-खुशी से बिताया। प्रातःकाल के अपमान की बात जैसे वह पूरी तरह भूल गया। मोहल्ले के बच्चों के साथ वह दिन भर खूब खेला-कूदा।

साँझ हुई, तो मां और बच्चों ने सारे घर को छोटे-छोटे दीपों की कतारों से आलोकित कर दिया। इस आलोक के बीचोंबीच नए देवी-देवताओं की पूजा की गई और उसके बाद बच्चों को भरपेट मिठाई खिलाई गई। राजीव को मिठाई देते हुए माँ ने कहा--"मिठाई खाकर तैयार हो जाओ बेटा। अभी हम सब लोग शहर की दीवाली देखने के लिए चलेंगे।"

बालक राजीव खुशी में भर कर नाच उठा। दीवाली देखने का आकर्षण उसके लिए मिठाई खाने से भी बढ़कर था। जल्दी-जल्दी मिठाई के कुछ टुकड़े खाकर शेष मिठाई उसने छोटे से एक डिब्बे में डाल ली और यह डिब्बा अपने हाथों में उठा कर वह बाजार चलने को तैयार हो गया।

बादाम और पिस्ते की बर्फ़ी उसे बहुत पसन्द थी। यह बर्फ़ी उसने राह में खाने के लिए अपने डिब्बे में डाल ली।

सारा शहर खूब सजा हुआ था। बड़ी-बड़ी दूकानें बिजली के सैकड़ों-हज़ारों बल्बों से प्रकाशित हो रही थीं और सद्‌गृहस्थों के घरों की छतों पर मिट्टी के दीये चमक रहे थे। जगह-जगह पटाखे बज रहे थे और आतिश-बाजियां चलाई जा रही थीं। प्रकाश और आह्लाद का यह त्यौहार देख कर बालक राजीव का जी खुश हो गया। शहर की बड़ी भीड़ में अपनी मां का हाथ पकड़े हुए वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

सहसा उसकी निगाह तेज़ नीले प्रकाश से चमचमाते हुए एक ऊंचे कलश पर पड़ी। उसकी माँ ने बताया कि यह लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है, जिसे आज दस हज़ार बल्बों से सजाया गया है। आस-पास की सब इमारतों से ऊँचा यह मन्दिर अपने नीले आलोक में बहुत ही भव्य और आकर्षक प्रतीत हो रहा था। माँ ने कहा––"बेटा, यह भगवान का मन्दिर है। मेरा हाथ पकड़ लो तो इस भीड़ के साथ-साथ हम लोग भी भगवान के दर्शन कर आएँ।"

माँ का हाथ कसकर पकड़ते हुए राजीव ने कहा––"हम जरूर चलेंगे माँ।" और इसके साथ ही उसने मिठाई के डिब्बे से अपने भीतर की जेब में पड़ी माता लक्ष्मी की उस छोटी-सी मूर्ति को दबा कर अपनी छाती से लगा लिया। जैसे उस मूर्ति की उपस्थिति की अनुभूति उसे बल दे रही हो। माँ का हाथ पकड़े-पकड़े नन्हें राजीव ने बड़े उल्लास के साथ कहा––"यह मिठाई हम भगवान पर चढ़ा देंगे माँ!"

माँ का हृदय आनन्द से भर आया। राजीव का मुँह चूम कर वह मन्दिर की ओर बढ़ चली। मन्दिर के सहन में फूल बिक रहे थे। देवता पर चढ़ाने के लिए राजीव की माँ ने कुछ फूल भी खरीद लिए।

मन्दिर में आज असाधारण भीड़ थी। पर प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था। एक ओर से भीड़ मन्दिर के भीतर जा रही थी और भगवान के दर्शन कर दूसरी ओर से लोग करीने के साथ बाहर निकल रहे थे। सब ओर पूरी

व्यवस्था थी, किसी तरह का धक्कम-धक्का या चीख-चिल्लाहट मन्दिर मे नहीं थी।

राजीव और उसकी माँ अपनी बारी से जब मन्दिर के द्वार के निकट पहुँचे, तो भीतर बहुत ही मधुर कंठ से गाये जाते हुए एक गीत का स्वर उन्हें सुनाई दिया। इसके क्षण भर बाद ही मन्दिर के प्रकोष्ठ से निकला अत्यन्त सुवासित होमधूम्र उनके नासापुटों में पहुँचा। दीपावली के उज्ज्वल प्रकाश मे वह मधुर संगीत और वह मनोहारी सुगन्ध। माँ की आँखों मे श्रद्धा के आँसू उमड़ आए। भक्ति के इस वातावरण का राजीव के बाल-हृदय पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

धीरे-धीरे राजीव और उसकी माँ मन्दिर के विशाल भवन मे प्रविष्ट हुए। वहाँ सभी कुछ चमक रहा था, सभी कुछ महक रहा था और जैसे सभी कुछ श्रद्धा के दिव्य संगीत से मुखरित हो रहा था। दो-दो की कतार मे सभी लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। एक हाथ में फल और मिठाई का डिब्बा उठाए और दूसरे से माँ का हाथ पकड़े राजीव भी क्रमशः मूर्त्ति की ओर बढ़ रहा था।

एक क्षण आया, जब राजीव और उसकी माँ ने अपने को भगवान की मूर्ति के सम्मुख पाया। श्रद्धा विह्वल होकर राजीव की माँ ने मूर्ति के सम्मुख अपना सिर झुका दिया। बालक राजीव भगवान पर चढ़ाने के लिए जल्दी-जल्दी अपने डिब्बे में से बादाम और पिस्ते की बरफी निकाल ही रहा था कि जैसे एकाएक वह उस मूर्ति को पहचान गया। ओह, यह तो प्रातःकाल वाली संगमरमर की मूर्त्ति का ही विशाल रूप है! मिठाई का डिब्बा और फूल एकाएक उसके हाथ से छूट कर नीचे बिखर गए और बहुत अधिक आतंकित-सा होकर बालक राजीव चिल्ला उठा—"माँ, माँ! देखो, यह तो अमीरों का भगवान है!"

माता लक्ष्मी की वह विशालकाय संगमरमर की उज्ज्वल मूर्त्ति फूलों से सजी-सजाई अब भी उसी तरह निर्निमेष रूप में बैठी थी और सहमा हुआ बालक राजीव अपने पीतल के छोटे-से भगवान को छाती से चिपकाए अत्यन्त भयभीत भाव से उसकी ओर देख रहा था।

सिकन्दर डाकू

दोपहर ढलने लगी थी, मगर सूरज अभी तक आग बरस रहा था।

दरबार साहब (अमृतसर) के दक्षिण में मुसाफ़िरों के लिए एक बहुत बड़ी धर्मशाला बनी हुई है। इस धर्मशाला में एक बहुत बड़ा तहखाना है। अंधेरा और सील से भरा हुआ। मेले-ठेले की बड़ी भीड़ को जगह देने के लिए ही इस तहखाने का उपयोग किया जाता है, अन्यथा पृथ्वी के भीतर बना हुआ, नीची छत का और बीसियों खम्बों पर टिका हुआ यह अन्धेरा तहखाना मध्ययुग के कैदखानों की याद दिलाता है। परन्तु गरमियों में यह तहखाना इतना शीतल रहता है कि धर्मशाला के अमीर-से-अमीर यात्री भी यहीं आकर अपनी दोपहर बिताते हैं।

इसी तहखाने में आज सुबह से दोआबे का महशूर डाकू सिकन्दर सिंह डेरा डाले पड़ा है। धर्मशाला में शराब पीना मना है; परन्तु सिकन्दर-सिंह सुबह-सुबह ही शराब की तीन बोतलें खाली कर चुका है। उसका डीलडौल इतना बड़ा और उसकी प्रकृति इतनी भयानक है कि उससे कुछ भी कहने का जैसे किसी को साहस ही नहीं हुआ। तहखाने में अंधेरा रहता है, इससे मक्खियाँ वहाँ आने की हिम्मत नहीं करतीं। परन्तु उनकी कमी मच्छर पूरी कर देते हैं। आज जैसे तहखाने भरके सभी मच्छर सिकन्दर सिंह के ही आस-पास आ जमा हुए थे। शराब की तीन बोतलें एक साथ चढ़ाकर सिकन्दर सिंह सो गया था। यही गनीमत है कि शराब पीकर उसने बकझक नहीं शुरू कर दी। दोपहर-भर वह इसी तहखाने के एक कोने में

पड़ा-पड़ा खुर्राटे भरता रहा। उसकी दाढ़ी, मूँछ और खुले केशों के तीन-तीन घने जंगलों में इस समय तक सैकड़ों मच्छर जा फँसे थे और मानो रास्ता भटक जाने के कारण वे सब साँय-साँय करके चिल्ला रहे थे। मच्छरों की यह सांय-साँय दूर-दूर तक के लोगों को परेशान कर रही थी, मगर सिकन्दर सिंह था कि मस्त होकर सो रहा था। खुद और दुनिया दोनों से बेख़बर।

सिकन्दर सिंह के नाम से सारा दोआबा थर-थर काँपता है। उसकी डकैत पार्टी ने एक बार पुनः पंजाब को वारन हेस्टिंग्स के ज़माने की याद दिला दी है। पिछले दो-तीन बरसों से उसका दल बाकायदा नोटिस देकर डाके डालता रहा है और पुलिस उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी। माँ-बाप ने सिकन्दर सिंह का नाम धरम सिंह रखा था; मगर व्यवहार में धर्म का शेर न बन कर वह सिकन्दर जा बना।

क़िस्मत के फेर से वही सिकन्दर आज एक फ़रार के रूप मे अमृतसर पहुँचा है। उसके प्रमुख साथी पकड़ लिए गए हैं; परन्तु वह पुलिस को चकमा देकर निकल आया है।

दोपहर जरा ढलने को हुई, तो सिकन्दर की नींद टूट गई। नशे की खुमारी इतना शीघ्र उतर गई थी। कुछ तो चिन्ता ने और कुछ मच्छरों ने जैसे उसका सारा नशा पी डाला था। लेटे-ही-लेटे जो उसने अंगड़ाई ली, तो उसके बालों में फँसे मच्छरों में खलबली मच गई। उनकी भिन-भिनाहट से बहुत परेशान होकर सिकन्दर ने अपनी लाल आँखें खोलीं और तब बिजली की तेजी से उसने अपनी दाड़ी-मूँछों को मसल डाला। इस जाल में जितने मच्छर फँसे हुए थे, उनमें से अधिकांश क्षण-भर कुचले जाकर सिकन्दर सिंह के चेहरे को और भी घिनौना बनाने लगे।

सिकन्दर ने दूसरी अंगड़ाई ली, और इसके बाद वह उठकर बैठ गया। दोपहर ढल रही थी, और पश्चिम के झरोखों से ज़रा-सा प्रकाश इस तहखाने में आ रहा था। सिकन्दर ने अपने को बहुत ही दलित दशा में अनुभव किया। उसकी बीती हुई रात बहुत ही घटनापूर्ण रही थी।

उसके सम्पूर्ण जीवन में इस रात के समान अभाग्यपूर्ण और भयंकर समय और कभी नहीं बीता। अपने जीवन-भर मे उसने जो इमारत बनाई थी, वह सहसा इसी एक रात में गिर पड़ी। आज, गरमियों की इस ढलती हुई दोपहर के समय, इस अंधेरे तहखाने मे अकेले और भूखे पेट बैठे हुए सिकन्दर को अपने जीवन मे पहली बार यह अनुभव हुआ कि वह एक बहुत बड़ा अभागा है। डाके डालकर, लोगों का गला घोंटकर, उसने जो धन जमा किया था, वह सब-का-सब इस तरह बिलकुल अचानक उसके हाथों से छिन गया और आज वह अपना सिर छिपाने के लिए इस तरह मारा-मारा फिर रहा है! यह भी कोई जिन्दगी है!

तहखाने की दूसरी ओर पाँच-छः प्रेमी सिक्ख बैठे सरदाई घोट रहे थे। सहसा उनमें से एक यात्री गुरुग्रन्थ साहब का कोई शब्द गा उठा, और तब एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक पहुँचता हुआ भक्ति का वह संगीत सम्पूर्ण तहखाने में मानो सजीव होकर गूंज उठा। भक्ति के संगीत का असर इतना द्रावक और इतना संक्रामक होता है, यह अनुभव सिकन्दर को आज पहली बार हुआ। आखिर वह भी एक सिक्ख ही था न। थोड़ी देर तक तन्मय-सा होकर इसी गीत को सुनता रहा, जैसे उसके व्याकुल हृदय पर कोई ठण्डा मरहम लगाया जा रहा हो।

परन्तु सिकन्दर सिंह के पके हुए हृदय पर से इस मरहम का प्रभाव बहुत शीघ्र नष्ट हो गया। पिछली रात की घटनाएँ रह-रहकर उसके उदास और व्याकुल हृदय को सन्तप्त करने लगीं। पिछले अठारह घंटे के भीतर-ही-भीतर जो अकल्पनीय घटनाएँ घटित हो गई है, वे सब एक-एक करके उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख घूम गई।

अजनाले के निकट एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँव में अधिकांश सिक्ख काश्तकार ही आबाद है। कल शाम को इसी गाँव के एक बनिये ने सिकन्दर और उसके साथियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया था। यह बनिया सिकन्दर का अन्तरंग मित्र था। सिकन्दर की डकैत पार्टी लूट-मार कर जो संग्रह कर लाती, वह सब इसी बनिये के यहाँ जमा किया

जाता था। हर दूसरे-तीसरे महीने इसी बनिये के यहाँ सिकन्दर का सम्पूर्ण दल जमा होता था और तब भविष्य का कार्यक्रम बनाया जाता था।

सदा के समान कल रात भी सिकन्दर तथा उसके प्रमुख सहकारी उसी बनिये के मकान पर एकत्र हुए थे। बनिया कल कुछ घबराया हुआ-सा प्रतीत होता था। सिकन्दर ने उससे इस घबराहट का कारण भी पूछा, परन्तु वह टाल गया। तन्दूर के पराँठें, सब्ज़ियां, बकरे का माँस, भुनी हुई मुरगियाँ, आम, खुमानियाँ आदि चीजें पेटभर खा लेने के बाद देशी शराब का दौर चलने लगा। बनिया खुद बहुत सम्भल कर पी रहा था; परन्तु सिकन्दर और उसके साथियों को वह खूब पीने के लिए प्रेरित कर रहा था। सिकन्दर को किसी बात का शक तो था नहीं, वह पीता चला गया। रात का समय था। गाँव की बात है, जहाँ रात होते ही सभी ओर गहरा अन्धकार छा जाता है। बनिये का मकान गांव के किनारे पर था। उसके बहुत नज़दीक से सैकड़ों गीदड़ों की चिल्लाहट सुनाई दे रही थी, परन्तु मकान के भीतर पूरा सन्नाटा था। शराब के नशे में भी ये डाकू शोरगुल प्रायः नहीं मचाते थे।

वह बनिया सहसा मस्ती का नाट्य करने लगा। बाकी सब लोगों पर भी शराब का नशा गहरा असर कर रहा था। बनिया अपनी भद्दी-सी आवाज़ मे कोई अश्लील गीत गुनगुनाने लगा और यह गुनगुनाहट क्रमशः ऊँची होती चली गई।

बनिये का यह संगीत जैसे कोई बँधा हुआ चिह्न था। गीत की आवाज़ ऊँची होते ही सहन के दरवाजे पर जोर की एक चोट पड़ी और दरवाज़ा उसी क्षण टूट कर गिर पड़ा। मिनट भर की भी देर नहीं हुई, और सिकन्दर तथा उसके साथियों ने अपने को हथियारबन्द पुलिस से घिरा हुआ पाया। सिकन्दर को सारा मामला समझने में देर नहीं लगी। उसकी कमर में एक छोटी-सी कृपाण बंधी थी। उसने चाहा कि वह अपनी कृपाण से बनिये के टुकड़े-टुकड़े कर डाले; परन्तु पुलिस ने अपने काम

में देर नहीं की। टार्च की तेज रोशनी मे सभी डाकुओं के हाथ-पैर कस दिए गए।

रात-ही-रात में यह ख़बर आस-पास के सभी गाँवों में फैल गई। गाँववालों के लिए यह संसार का सबसे बड़ा समाचार था। एक मोटर-लारी मे बन्द करके सब डाकुओं को उसी समय अजनाला पुलिस स्टेशन पर पहुँचा दिया गया।

रात के तीसरे पहर, जब सिकन्दर के सभी साथी सींकचों मे बन्द होकर ऊँघ रहे थे, उसके एक दोस्त और फरमाबरदार साथी डाकू ने जिस तरह अपनी जान पर खेल कर उसे हवालात से छुड़वाया और जिस तरह रात-ही-रात मे अजनाले से भाग कर वह अमृतसर तक आ पहुँचा, वह सब सिकन्दर को जैसे किसी बहुत पुरानी, पिछले जन्म की-सी याद के समान जान पड़ा।

और अब, जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना के कुछ ही घण्टों के बाद, भक्ति का यह संगीत, तीर्थयात्रियों का यह उल्लास और गुरुओं की पवित्र भूमि यह अमृतसर! सिकन्दर चौंककर उठ खड़ा हुआ। वह आज अमृतसर मे है। अपने डकैत-जीवन मे वह आज पहली बार अमृतसर आया है। और कहीं न जाकर वह अमृतसर क्यों चला आया ?

और तब सिकन्दर सहसा विचलित हो उठा और अत्यधिक उद्विग्न भाव से उसी अन्धकारमग्न तहखाने के भीतर, सीमित-से स्थान पर टहलने लगा।

साँझ हो आई थी। तहखाने के भीतर से अधिकांश लोग बाहर चले गए थे। सिकन्दर को भी भूख-प्यास की जलन अनुभव होने लगी। आज सुबह-सुबह अमृतसर पहुँचते ही बाजार की किसी दूकान से वह शराब तीन बोतलें चुरा लाया था। उन तीन बोतलों के अतिरिक्त कल रात से अभी तक कुछ भी उसके पेट में नहीं पहुँचा था।

सिकन्दरसिंह ने अपने कपड़े झाड़े, और तब वह तहखाने से बाहर निकल आया। सराय के ठीक बीचोंबीच बनी टंकी का नल खोलकर

उसने हाथ-मुँह धोया, बाल साफ़ किए और कंघी की सहायता से यथासम्भव शरीफ़ाना और रोबीली सूरत बनाकर वह सराय से बाहर चल दिया।

सूरज अब तक मकानों की ओट में हो गया था, इससे अमृतसर की तंग सड़कें पूर्णरूप से छायामय हो गई थीं और उन पर आवागमन बहुत बढ़ गया था। सिकन्दरसिंह धीमी चाल से चुपचाप इसी भीड़ में बढ़ता चला गया। अमृतसर के तंग, परन्तु सम्पन्न बाजारों मे उसे कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। इस समय तो उसे केवल दो ही बातों की चिन्ता थी--एक तो पेट भरने की और दूसरा पुलिस से बचने की।

जलियाँवाला बाग के निकट पहुँचकर उसकी निगाह उर्दू अख़बारों के साँझ-संस्करण के पोस्टरों पर पड़ी। यह देखकर उसे विशेष सन्तोष हुआ कि उसी की कल की बहादुरी के कारनामे उन पोस्टरों मे बड़े-बड़े अक्षरों में दिए गए है। इन्हीं पोस्टरों से उसे मालूम हुआ कि उसे पकड़ने वाले के लिए सरकार ने ५,००० रुपये के इनाम की घोषणा की है।

घूमते-फिरते सिकन्दर गुरु बाजार मे जा पहुँचा। इस तंग-से बाजार में भीड़भाड़ और भी अधिक थी। एक जगह उसने देखा कि एक दूकान के सामने एक शानदार बड़ी मोटर गाड़ी खड़ी है और उसकी अगली सीट पर बैठे दो सज्जन उसी के सम्बन्ध मे बाते कर रहे है। इस कार की पिछली सीट पर तीन महिलाएँ बैठी हुई थीं। एक वृद्धा और दो युवतियां। उनके बीचोंबीच चमड़े का एक छोटा-सा सुनहरा बटुआ पड़ा हुआ था। सिकन्दर ने उस बटुए को तथा उस वृद्ध महिला के कीमती आभूषणों को लालच की निगाह से देखा। वे दोनों भद्र पुरुष उसके सम्बन्ध मे क्या बाते कर रहे हैं, यह जानने की भी उसे उत्कण्ठा हुई। बाजार मे बेहद भीड़ थी और इस जगह कार खड़ी होने के कारण बाजार का आवागमन और भी दिक्कत के साथ हो रहा था। सिकन्दरसिंह इसी भीड़ में इधर से उधर धक्के खाने और धक्के मारने लगा।

एक ही दो मिनट के भीतर गुरु बाजार में एक भारी डकैती हो जाने का शोर मच गया। कार में अपने पति और अपनी सन्तान के साथ बैठी हुई

एक सम्भ्रान्त महिला के गले का कीमती हार और बटुआ दिन-दिहाड़े चोरी हो गया। लोगों ने चोर को देखा भी, मगर वह पकड़ा नहीं जा सका। दो-तीन हजार रुपयों की चोरी का यह समाचार फरलांग भर की दूरी पर पहुँच कर दो-तीन लाख रुपयों की चोरी का समाचार बन गया और तब सम्पूर्ण गुरु-बाज़ार में जैसे एक भूकम्प-सा आ गया।

और उधर चोरी के माल को अपने कच्छे मे छिपाये हुए सिकन्दर-सिह अब तक घंटाघर के नजदीक जा पहुँचा था। घंटाघर के आस-पास जो थोड़ी-सी खुली जगह है, वहाँ खड़े होकर दो-एक क्षण तक परिस्थिति पर विचार करते हुए सिकन्दर ने सोचा कि सब से अच्छा यही रहेगा कि वह पुनः उसी तहखाने में पहुँचे, ताकि बटुए में से रुपया निकाल कर वह खाने-पीने का कुछ इन्तजाम कर सके। इस समय क्षुधानिवारण ही उसको सबसे बड़ी समस्या थी।

परन्तु सहसा उसकी निगाह अपनी दाहनी ओर घूम गई। घंटाघर के निकट ही स्वच्छ जल का एक बहुत बड़ा तालाब है। श्वेत संगमरमर मे छाया हुआ-सा। इस तालाब के बीचोंबीच एक बहुत बड़ा मन्दिर है। सोने-से ढका हुआ-सा। इस अँधियारी साँझ को बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में जैसे वह सम्पूर्ण मन्दिर और संगमरमर मे मढ़ा हुआ वह सम्पूर्ण ताल्राब झकझक कर रहा था।

सिकन्दरसिंह को यह दृश्य सचमुच स्वर्गीय जान पड़ा। जिस दरबार साहब की महिमा वह बचपन से सुनता चला आया है, जिसकी भव्यता उसके अन्तःकरण में माँ की मधुर याद के समान अंकित है, जो प्रत्येक सिक्ख के लिए सबसे बड़ा तीर्थ है, वही पवित्र दरबार साहब इस समय उसकी आँखों के सामने है। वह आज अचानक दरबार साहब की ड्योढ़ी के निकट आ खड़ा हुआ है—इस अनुभूति ने उसके हृदय में एक विशेष प्रकार की उमंग-सी पैदा कर दी, और इसके बाद जूते उतारकर वह भी दरबार साहब की दर्शनार्थी भीड़ में शामिल हो गया।

यन्त्रचालित के समान आगे बढ़ते-बढ़ते उसने अपने को दरबार

साहब में ठीक गुरुग्रन्थ साहब के सामने पाया। संगत लगी हुई थी। अन्य तीर्थ-यात्रियों के साथ-साथ भीतर पहुँच कर सिकन्दर ने अत्यन्त श्रद्धा-भाव से मस्तक झुकाकर अदृश्य परम अकाल पुरुष को प्रणाम किया। एक सेवादार ने थाल में से थोड़ा-सा हलुआ निकाल कर सिकन्दर को प्रसाद दिया, जिसे माथे से लगाकर वह अत्यन्त भक्ति भाव से उदरस्थ कर गया। इसके बाद निकट ही एक ओर वह भक्तों की श्रेणी में जा बैठा।

मन्दिर के भीतर सुगन्ध की लपटें-सी उठ रही थीं। ग्रन्थी महोदय बहुत ही श्रद्धा-भाव से गुरुग्रन्थ पर चँवर डुला रहे थे। एक ओर रागियों की टोली बैठी थी और सितार, तबला तथा हारमोनियम के साथ वह आलाप ले रही थी--

हम निरगुन तुम तत्तागयानी !

भक्त लोग चुपचाप सुन रहे थे। पन्द्रह-बीस मिनट बीत गए और वह आलाप समाप्त नहीं हुआ--

हम निरगुन तुम तत्तागयानी !

मालूम नहीं, यह आलाप कब से शुरू हुआ था और कब तक जारी रहेगा। गाने वाले गाए जा रहे हैं और सुनने वाले सुने जा रहे हैं--

हम निरगुन तुम तत्तागयानी !

इन सरल से शब्दों में कुछ ऐसी गहराई थी, भक्तिभाव में डूबे इस सम्मिलित स्वर में कुछ ऐसा माधुर्य था, चारों ओर के वातावरण में कुछ ऐसा जादू था कि जन्म-भर के डकैत और हत्यारे सिकन्दरसिंह के अंन्तःकरण में भी क्षणभर के लिए मानो आत्म-प्रकाश का उजियाला-सा छा गया। हाँ, सच ही तो है। उसका जीवन पाप का जीवन है। उसमें तत्त्व ज़रा भी नहीं, गुण एक भी नहीं। और हे परम अकाल पुरुष ! तुम तत्व ही तत्व हो ! तुम मेरे अन्तरतम को पहचानते हो। मैं अधम हूँ, नीच हूँ, महापापी हूँ, परन्तु मैं तुम्हारा दास हूँ। केवल तुम्हारे ही नाते अब भी मेरे लिए आशा हो सकती है !

सिकन्दरसिंह के शरीर-भर में रोमांच हो आया। भक्ति के आवेश

में क्षणभर के लिए जैसे वह सभी कुछ भूल गया। वह भूल गया कि वह एक डाकू है और उसे पकड़ने वाले के लिए पाँच हज़ार रुपयों के इनाम की घोषणा हो चुकी है। वह भूल गया कि वह सुबह का भूखा है और इस वक्त उसे ज़ोर की भूख मालूम हो रही है। वह तो इतना भी भूल गया कि वह एक मुसाफिर है और क्षणभर के लिए यहाँ आ बैठा है। उसे तो ऐसा जान पड़ा, जैसे वह मुद्दत से इसी मन्दिर का है, जैसे संसार के साथ उसका कहीं कोई नाता नहीं। नाता है तो सिर्फ़ इसी मन्दिर से, इसी दरबार से और इसी दरबार के साहब से!

रागी अब भी गाए जा रहे थे। वही चीज़--

हम निरगुन तुम ननागनाती!

अपने जीवन मे शायद पहली बार सिकन्दरसिंह की आँखों मे पानी भर आया!

इसी समय किसी भद्रकुल की एक बहुत ही सुन्दर नारी ने मन्दिर मे प्रवेश किया। इस महिला की गोद मे दो-तीन महीने का फूल-सा कोमल एक बालक था। वह महिला बड़ी भक्ति के साथ आगे बढ़ी और अपने गोद के बालक के मस्तक को उसने ग्रन्थ साहब के नीचे के फर्श से छुआ दिया। इसके बाद वह स्वयं अपना मस्तक झुकाकर ग्रन्थ साहब के सन्मुख साष्टांग प्रणाम करने लगी। प्रतीत होता है, जैसे वह अपनी प्रथम सन्तान की कोई मनौती मनाने यहाँ आई थी।

दो-तीन मिनट के बाद वह महिला उठी। अपनी कलाइयों में सोने की वह जितनी चूड़ियाँ पहने हुई थी, वे सब उसने उतार दीं और अत्यन्त श्रद्धा-भाव के साथ उन्हें ग्रन्थ साहब के सामने बिछी चादर पर रख दिया।

मन्दिर में उपस्थित सभी लोगों ने उस नारी के इस त्याग को बड़ी श्रद्धा के साथ देखा। परन्तु सिकन्दरसिंह पर तो इस घटना ने जैसे जादू कर दिया। उसका अंग-अंग काँपने लगा और बहुत ही विचलित होकर वह उठ खड़ा हुआ। काँपते हुए हाथों से उसने हाल ही में चुराया हुआ वह सोने का कण्ठहार तथा बटआ बाहर निकाला और परम अकाल पुरुष के सम्मुख

नतमस्तक होकर उसने वे दोनों चीज़ें उसी चादर पर रख दीं। और इसके साथ-ही-साथ फ़ौलाद-सा मज़बूत सिकन्दरसिंह बच्चों की तरह फुफकार कर रो उठा!

दस बजते-न-बजते सम्पूर्ण अमृतसर में इसी बात की चर्चा थी कि दोआबे का प्रसिद्ध डाकू सिकन्दरसिंह दरबार साहब में गिरफ़्तार हो गया है।
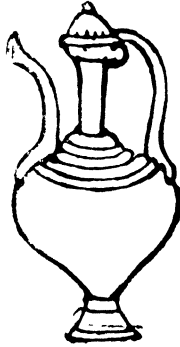
जाल

चण्ड और मित्र दोनों विभिन्न प्रकृति के दो राजा थे। चण्ड का राज्य सिन्धु नदी की घाटी मे विस्तीर्ण था और मित्र काश्मीर के सुन्दर पहाड़ी प्रदेश का अधिपति था। दोनों की कुमारावस्था के कुछ वर्ष, एक ही आश्रम में साथ-साथ कटे थे। आचार्य के आश्रम में रहते हुए चण्ड ने युद्ध-विद्या में प्रवीणता प्राप्त की थी और मित्र ने चित्रकला और गाने-बजाने में। दोनों नवयुवक समवयस्क थे। दोनों ही आर्यावर्त के दो प्रसिद्ध राजवंशों के उत्तराधिकारी थे। फिर भी उनके स्वभाव मे इतनी विषमता थी कि उन दोनों की प्रवृत्तियों मे कहीं साम्य दिखा सकना भी आसान नहीं था।

राजा बनते ही मित्र ने काश्मीर में एक सुन्दर महल बनवाया, और उसके चारों ओर विशाल और रमणीक उद्यान लगवाना शुरू किया। इस महल में रोज़ सायंकाल को संगीतसभा जुटने लगी। दूर-दूर से कलावन्त मित्र के दरबार में, उसका आश्रय पाने के लिए आने लगे। कविता, चित्र-कला और संगीत--मित्र को इन तीनों का जैसे व्यसन था। परिणाम यह हुआ कि मित्र का महल शीघ्र ही सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की कला का केन्द्र बन गया।

इसके बाद मित्र ने विवाह किया। लद्दाख़ की एक सर्वाङ्गसुन्दरी राज-कुमारी को मित्र की राजरानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह इतनी सुन्दरी और इतने मधुर स्वभाव की थी कि उसको पाकर मित्र ने मानो सभी कुछ पा लिया। उसे और किसी वस्तु की चाह बाकी न रही।

राजा मित्र का जीवन इसी तरह बड़े आनन्द से व्यतीत होने लगा।

उधर चण्ड को राजा बनते ही सबसे पहले अपने विवाह की सूझी। यह नहीं कि उसे विवाह कर लेने की कोई विशेष इच्छा थी। फिर भी सबसे पहले उसने विवाह इसलिए किया कि उसे ज्ञात था कि वह एक राजा है, और राज्य के लिए किसी उत्तराधिकारी का होना आवश्यक है। चण्ड ने सोचा, जब एक दिन विवाह का झंझट सिर पर लेना ही है, तो क्यों न सबसे पहले इसीसे निबट लिया जाए। परिणाम यह हुआ कि पंचनद के एक छोटे-से शासक की दुहिता को उसने अपनी वधू बना लिया।

राज्याभिषेक के बाद १८ महीनों तक चण्ड अपनी राजधानी में रहा। इस बीच में वह एक स्वस्थ और तेजस्वी बालक का पिता भी बन गया।

पुत्र-जन्म होते ही चण्ड के लिए जैसे विवाह का उद्देश्य पूरा हो गया। घर-गिरस्ती का मोह त्याग कर अब उसने अपनी चिरसंचित अभिलाषाओं को पूरा करने की ओर ध्यान दिया। वह वीर था, महत्वाकांक्षी था। एक बार ललचाये हृदय से उसने आर्यावर्त के सम्पूर्ण राज्यों पर दृष्टि डाली और इसके बाद दिग्विजय की घोषणा कर दी।

चण्ड सचमुच चण्ड था। उसने जिस राज्य की ओर आँख उठाई, उसे अपने अधीन करके ही दम लिया। कहीं भी उसे पराजय का मुंह नहीं देखना पड़ा। एक-एक वर्ष बीतता गया और उसके साथ-साथ चण्ड का राज्य भी अधिकाधिक विस्तृत होता चला गया।

(२)

इसी तरह चौबीस लम्बे-लम्बे साल बीत गए। चण्ड का राज्य अब साम्राज्य बन गया। पुष्पपुर से लेकर कच्छ तक उसी का झंडा उड़ता था। चण्ड के जी में अनेक बार यह इच्छा भी पैदा हुई कि वह काश्मीर भी विजय करे, परन्तु मन-ही-मन वह अपने सहपाठी मित्र का लिहाज़ करता था। उसके मन्त्री और सेनापति काश्मीर के अलौकिक प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन कर उसे काश्मीर-विजय के लिए उकसाते थे। काश्मीर की रमणीकता का वर्णन कर जब उसे बताया जाता था कि उस स्वर्ग-सदृश प्रदेश पर एक ऐसा कापुरुष राजा शासन कर रहा है, जिसे चित्रकला और संगीत से

क्षण-भर की भी फुरसत नहीं मिलती, तब चण्ड के मन में मित्र के प्रति भारी क्षोभ और क्रोध का-सा भाव उत्पन्न होता था। कभी-कभी तो उसके जी में यह भी आता था कम-से-कम मित्र की अकर्मण्यता को भंग करने के उद्देश्य से ही वह उसके राज्य पर आक्रमण कर दे।

किन्तु इसी बीच में एक दिन चण्ड को यह समाचार मिला कि उसके सहपाठी राजा मित्र की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया है। चण्ड इस बात का अन्दाज़ आसानी से लगा सकता था कि मित्र जैसे कोमल स्वभाव वाले पुरुष के लिए पत्नी के देहान्त हो जाने का क्या अर्थ है। इसलिए उसने काश्मीर पर आक्रमण करने का इरादा बिल्कुल छोड़ दिया।

उधर अपनी पत्नी को खोकर राजा मित्र का जीवन ही बदल गया। बाह्य रूप से मित्र ने अपने को बहुत सँभाला। अपने बाह्य-जीवन में उसने कोई परिवर्तन नहीं आने दिया। संगीत-सभा अब भी जुटती थी। कवि-दरबार अब भी लगता था। मित्र इन सब में उपस्थित भी रहता था, परन्तु उसके दिल पर जो कुछ बीत रही थी, उसका बोझ इतना भारी था कि देखते-ही-देखते वह तरुण से बूढ़ा हो गया। उसके हृदय में अब जीवन के लिए कोई मोह नहीं बच रहा। वह अब भी गाता था, मगर अब उसके सभी स्वर इतने करुण हो गए थे कि सुनने वालों की आँखों में बरबस आँसू भर आते थे। उसकी कविताएँ भी अब द्रावक होती थीं, और उसके चित्रों में अटूट निराशा का भाव अंकित होने लगा था।

मित्र की एक लड़की थी, उसकी एकमात्र सन्तान। यह लड़की खिलते हुए गुलाब के समान स्वस्थ और पीत राजकमल के समान सुन्दर थी। उसका नाम तो कुछ और था, परन्तु मित्र उसे सदैव 'लता' कहकर ही बुलाया करता था। लता राजा मित्र का सर्वस्व थी। मित्र उसका पिता तो पहले ही था, अब वह उसकी माँ भी बन गया।

(३)

राज्यारोहण के २४ वर्ष बाद पश्चिम के एक घनघोर युद्ध में वीर राजा चण्ड वीरगति को प्राप्त हो गया। इस अवसर पर चण्ड का पुत्र भी

साथ ही था। पिता का देहान्त हो जाने पर,पुत्र ने अपनी घबराई हुई सेना को आश्वासन दिया और उसकी कुशल वीरता का ही यह परिणाम हुआ कि राजा चण्ड को खोकर भी उसकी सेना ने पश्चिम पर अपनी विजय-पताका स्थापित कर ही दी। राजा चण्ड मर गया, पर राजा अमर है।

इस शोक-विजय से राजधानी में वापस आते ही चण्ड के वीर पुत्र ने अपना राज्याभिषेक करवाया। उसकी आयु इस समय २३ बरस की थी। पिता की सभी प्रवृत्तियाँ मानो पुत्र में और भी अधिक घनीभूत होकर एकत्र हो गई थीं। सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अपनी विजय-पताका फहराने की अदम्य लालसा को लेकर उसने अपने पिता के सिंहासन पर पैर रखा और घोषणा कर दी कि भविष्य में उसे भी 'चण्ड' के नाम से ही याद किया जाए।

यह 'चण्ड-पुत्र' 'चण्ड-पिता' से भी अधिक कठोर स्वभाव का था। स्त्रियों मे जैसे उसे चिढ़ थी। अपनी माता के लिए उसके हृदय में अपार श्रद्धा का भाव था; परन्तु उसकी माँ का भी यह साहस न होता था कि वह उससे विवाह कर लेने का अनुरोध कर सके। एक बार की बात है, चण्ड की माँ ने उससे कहा--"बेटा, मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब अपने हाथों से मैं तुम्हारे सिर पर विवाह का मुकुट बाधूँगी।"

चण्ड यह सुनकर बहुत गम्भीर हो गया। माँ के अनुरोध से खीझकर उसने जवाब दिया--"मेरा जन्म होते ही तुमने मेरा गला क्यों नहीं घोंट दिया था मां?"

माँ ने यह सुना और वह सन्न रह गई। चण्ड को शीघ्र ही अपनी गलती का ज्ञान हुआ। उसने ज़रा नरम पड़कर कहा--"मुझे क्षमा करना माँ! परन्तु तुम्हीं सोचकर देखो; पिताजी दिग्विजय के जिस महान् कार्य को अधूरा छोड़ गए है, उसका ध्यान भुलाकर मैं किसी कमज़ोर और मूर्ख-सी बालिका के साथ बिलकुल निठल्लों का-सा जीवन बिताने लगूं, तो इससे बढ़कर भीरुता और क्या होगी? अगर मुझे यही करना होता, तो अपने वीर पिता के नाम को अपना लेने का मुझे अधिकार ही क्या था?"

माँ ने कोई जवाब नहीं दिया, और उस दिन के बाद से उसने अपने

पुत्र से विवाह कर लेने का अनुरोध भी नहीं किया।

चण्ड की एक चचेरी बहन थी, विमला। बड़ी हँसोड़ और बड़ी चंचल। दुनिया-भर में चण्ड अगर किसी का लिहाज करता था, तो अपनी इसी बहन का। वह एक बार अपनी ससुराल से चण्ड की राजधानी में आई। चाची के मन में क्या दुख है, यह समझने में उसे देर न लगी।

एक दिन की बात है, विमला ने अपनी चाची से कहा--"अम्मा, तुम घबराती क्यों हो! मैं इन मर्दों का स्वभाव अच्छी तरह जानती हूँ। चण्ड तो यों ही शेखी बघारता फिरता है। ज़रा उसके सामने किसी सुन्दरी कुमारी को पेश तो करो; फिर देखो उसके जी का क्या हाल होता है।"

परन्तु चण्ड की माँ अपने बेटे को खूब अच्छी तरह पहचानती थी। उसने धीरे से इतना ही कहा--"चण्ड उस किस्म का मर्द नहीं है।"

चाची ने उसके प्रस्ताव में कोई दिलचस्पी नहीं ली, यह देखकर भी विमला हतोत्साह नहीं हुई। विमला की छोटी ननद उसकी अन्तरंग सहेली भी थी। विमला को उसके सौन्दर्य पर अगाध विश्वास था। उसने उसे अपने पास बुला भेजा।

इसके कुछ ही दिनों बाद रात को महल की छत पर से सारंगी के साथ एक अपरिचित-सी, किन्तु अत्यन्त कोमल और मधुर स्वरलहरी सोते-हुए चण्ड के कान में पहुँची। उसकी नींद उचट गई। कुछ देर तक तो वह अनमने भाव से इस मधुर स्वर को चुपचाप पड़ा-पड़ा सुनता रहा। उसे ज्ञात था कि आज विमला की ननद महल में आई है। परन्तु उसके बाद वह जैसे खीझ-सा गया। अपने एक शरीर-रक्षक को बुलाकर उसने ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा--"मां से कह दो, उन्हें अगर गाना सुनना हो तो वे आमोद-गृह में चली जाएँ। यहाँ मेरी नींद खराब न करें।"

शरीर-रक्षक को ऊपर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह मधुर संगीत, उसी क्षण आप-से-आप--जैसे चोट खाकर--बीच ही में टूट गया।

अगले दिन की बात है, चण्ड अपने आहार-गृह में बैठ कर भोजन कर रहा था। जब उसे किसी खाद्य वस्तु की ज़रूरत पड़ी, तो लज्जा के भारी

बोझ मे दबी हुई एक कोमलांगी युवति ने विमला के साथ उस भवन में प्रवेश किया। चण्ड आज सुबह से बहुत प्रसन्न था; परन्तु एक अपरिचित युवति को अपने निकट देखकर जैसे उसकी सम्पूर्ण प्रसन्नता नष्ट हो गई। वह एकाएक गम्भीर हो गया। अपनी बहन के एक भी मज़ाक का जवाब न देकर वह शीघ्रता से भोजन समाप्त कर उठ गया।

इसके बाद विमला को भी साहस न हुआ कि वह इस सम्बन्ध मे चण्ड पर किसी तरह का दबाव डाले।

(४)

नवयुवक चण्ड अब प्रायः राजधानी से बाहर रहने लगा। पहली ही लड़ाई में उसे असाधारण सफलता मिली। शेर के बच्चे को खून का चस्का लग गया। संसार-भर के और सब काम-काज छोड़कर चण्ड ने दिग्विजय को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। धन, कीर्ति, सुख--इनमे से एक भी उसका उद्देश्य नहीं था। वह दिग्विजय मात्र इसलिए करता था कि लड़ाई लड़ने में, अपनी जान जोखम मे डालने में और दूसरों से पराजय स्वीकार करवाने में उसे अपार आनन्द का अनुभव होता था।

चण्ड ने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड को विजय कर लिया। दूर-दूर के राज्यों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अगर बाक़ी बच रहा, तो वही काश्मीर, जिसपर उसके पिता ने जान-बूझ कर चढ़ाई नहीं की थी।

परन्तु चण्ड इस सम्बन्ध में अपने पिता का अनुसरण नहीं कर सका। उसकी दिग्विजय की लालसा इतनी बढ़ गई थी कि वह काश्मीर को अछूता बचा हुआ न देख सका। यह चण्ड के राज्याभिषेक का पाँचवाँ वर्ष था।

एक दिन राजा मित्र के दरबार में चण्ड का दूत यह सन्देश लेकर आया कि उसके सहपाठी का पुत्र उसके राज्य पर आक्रमण कर देगा, यदि वह उसकी अधीनता स्वीकार नहीं कर लेता। यह भी कि सम्राट् चण्ड अपनी सेनासमेत काश्मीर राज की सीमा पर आ पहुँचा है।

मित्र एक तो बूढ़ा हो गया था, दूसरे ललित-कलाओं की ओर असामान्य रुचि होने के कारण उसने अपने सैन्य-संगठन की ओर कभी ध्यान

ही नहीं दिया था। अब सम्राट् चण्ड की चुनौती सुनकर उसे कुछ सूझ ही न पड़ा कि वह इस आक्रमण से अपने देश की रक्षा किस तरह करे।

परन्तु मित्र का प्रधानमन्त्री एक बड़ा चतुर और नीतिज्ञ व्यक्ति था। दूत के चले जाने के बाद मित्र ने जब उससे सलाह माँगी, तो वह मुस्करा भर दिया। राजा मित्र ने अपने मन्त्री को आश्चर्य से देखा; यह निराला आदमी है! अपने मालिक के आश्चर्य को और भी अधिक बढ़ाते हुए प्रधानमन्त्री ने कहा—"आपके पास तो एक ऐसा अचूक शस्त्र है कि चण्ड आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।"

मित्र ने आश्चर्य से कहा—"मैं तुम्हारी बात नहीं समझा।"

"मैं आपके अचूक महास्त्र का निर्देश कर रहा हूँ।""

"किस अस्त्र का ?"

"मुझे क्षमा कीजिए। आपकी पुत्री, महाराजकुमारी लता।"

मित्र को अब सारी बात समझ में आ गई; परन्तु उसने झुँझलाकर कहा—"उँह, विवाह के लिए भी कभी किसी पर जोर-जबरदस्ती की जा सकती है ? फिर, चण्ड का जो स्वभाव है, उसे तुम नहीं जानते। मैंने सुना है कि उसे यदि एक घंटे के लिए भी परमेश्वर बना दिया जाए, तो वह संसार-भर की स्त्रियों को पुरुष बना देगा!"

मगर प्रधानमन्त्री अब भी निश्चिन्त थे। उन्होंने अनेक बातें कहकर महाराज को यह बात समझा दी कि वह सब कुछ ठीक कर लेंगे। महाराज अपनी संगीत-मंडली को एक दिन के लिए भी स्थगित न करें।

यथासमय सम्राट् चण्ड के सैन्य-शिविर में महाराजा मित्र के दूत ने यह सन्देश पहुँचाया कि उसके महाराज अपनी राजधानी में सम्राट् चण्ड का स्वागत करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। चण्ड के पिता के प्रति उनके हृदय में अगाध सौहार्द के भाव थे, चण्ड-पुत्र के लिए भी उनके हृदय में वैसा ही स्नेह का स्थान है। अपने सहपाठी के पुत्र से पराजय स्वीकार कर लेने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं; परन्तु उससे पूर्व वह चण्ड से व्यक्तिगत-रूप से मिलकर अपने हार्दिक भाव उन तक पहुँचा देना चाहते हैं।

अपने पिता का मित्र होने के कारण चण्ड को महाराजा मित्र पर पूर्ण विश्वास था। अतः उनसे एकान्त में मिलने के लिए वह इस शर्त पर तैयार हो गया कि उसकी सम्पूर्ण सेना को मित्र की राजधानी तक पहुँच लेने दिया जाए।

(५)

सूरज अभी डूबा नहीं था। आसमान में बादलों के टुकड़े छितराये हुए थे। अस्त होते हुए सूर्य की किरणों से इन बादलों का रंग प्रतिक्षण बदल रहा था। इसी समय सम्राट् चण्ड की सवारी ऊँची पहाड़ी पर के एक विशाल उद्यान के सम्मुख रुकी। मित्र का प्रधानमन्त्री वहाँ उसका स्वागत करने के लिए मौजूद था। उसने चण्ड को बताया कि आप सामने के मार्ग पर से चलकर दाहिनी ओर को घूम जाइए; कुछ दूर चल कर आप को एक घना लताकुंज दिखाई देगा। उसी कुंज मे महाराजा मित्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह सब बताकर प्रधानमन्त्री ने सम्राट् चण्ड को प्रणाम किया। चण्ड के सभी साथी द्वार पर रुक गए, और वह अकेला आगे बढ़ा।

काश्मीर का यह राज-उद्यान अत्यधिक मनोहर था। राह के दोनों ओर सुन्दर फूल-पत्तों से लदे हुए पेड़-पौधे लगे थे। सभी ओर मख़मली गद्दों के समान नरम, श्यामल रंग की घास उगी हुई थी। सामने, निचाई पर एक बड़ी झील खुली-सी पड़ी थी। इस झील के शान्त वक्षस्थल का एक भाग आकाश के रंगीन बादलों से प्रतिबिम्बित हो रहा था। बाईं ओर एक ऊँचा पहाड़ था, जिसपर मीलों तक चौड़ का घना जंगल फैला हुआ था, जिधर नज़र जाती थी, उधर सौन्दर्य ही सौन्दर्य बिख़रा हुआ था।

प्रकृति के इस अपार सौन्दर्य को नवयुवक चण्ड ने आज पहली बार कौतूहल के साथ देखा। मामूली चाल से आगे बढ़ते हुए वह दाहिनी ओर के मार्ग की ओर घूम गया। सामने ही हल्के जामनी रंग के हज़ारों-लाखों फूलों से भरा एक लताकुंज था। चण्ड धीरे-धीरे इस कुंज के भीतर जा पहुँचा। यहाँ अभी तक काफ़ी प्रकाश था। चण्ड ने आश्चर्य से देखा कि

कुंज में कोई नहीं है। कुंज के बीचोंबीच एक शय्या पर ताज़ी गिरी हुई हिम के समान शुभ्र वस्त्र बिछा हुआ था। उसके पास एक कीमती वीणा रखी हुई थी। परन्तु वहाँ आदमी कोई भी नहीं था।

चण्ड को आश्चर्य हुआ कि बात क्या है। उसने सोचा, शायद चचा मित्र कुंज की दूसरी तरफ़ विद्यमान हों। कुंज के दूसरी ओर क्या है, यह जानने का कौतूहल भी चण्ड के दिल में पैदा हुआ, और वह उस ओर बढ़ चला।

इस ओर का दृश्य और भी अधिक शानदार था। नीचे की झील यहाँ से बहुत निकट प्रतीत होती थी। झील से जल में समीप की पहाड़ी के श्यामल जंगल का स्थिर प्रतिबिम्ब अत्यधिक सुहावना प्रतीत हो रहा था। इस ओर के फूल सुन्दर होने के साथ-ही-साथ सुगन्धित भी थे। भीनी-भीनी सुगन्ध से चण्ड का दिमाग़ तर हो गया।

यह क्या! यह मानवी है या अप्सरा? नवयुवक चण्ड ने चकित होकर देखा--अंगूर की एक लता का सहारा लिये देवबाला के समान सुन्दरी एक युवती स्थिर दृष्टि से झील की ओर देख रही है। इस युवती के सिर पर कोई आवरण नहीं था। उसके कोमल और खूब लम्बे केशपाश उसकी समूची पीठ पर फैले हुए थे। शरीर पर हलके धानी रंग का क़ीमती कौशेय वस्त्र था। उसकी आकृति इतनी मनोहर थी कि चण्ड जैसा कठोर नवयुवक भी अपनी निगाह उसपर से शीघ्र नहीं हटा सका।

परन्तु चण्ड की यह दशा अधिक देर तक न रही। उस युवती का ध्यान अभी तक भंग नहीं हुआ था। चण्ड ने अपनी आँखें उस ओर से हटा लीं, और चुपके-से वह वापस लौट चला।

चण्ड पुनः कुंज में पहुँचा। वहाँ अभी तक कोई नहीं आया था। वह सोचने लगा कि अब क्या किया जाए। चण्ड यह निश्चय न कर सका कि लौट जाऊँ, यहाँ बैठकर इन्तज़ार करूँ, या बाहर जाकर सौन्दर्य का अवलोकन करूँ। इसी समय चण्ड के दिल में सहसा एक ऐसी धड़कन उठ खड़ी हुई थी, जिसका अपने जीवन में उसने आज तक कभी अनुभव नहीं

किया था। जी ने कहा, चलो एक बार और देख लेने में हर्ज ही क्या है ? मगर पाँव न उठे। इसी समय दिमाग़ ने एक बहाना खोज निकाला--उससे पूछूँगा कि महाराज मित्र कहाँ है। यहाँ और कोई है भी तो नहीं। आख़िर पूछूँ भी तो किससे ?

चण्ड कुंज से बाहर निकला। उसके दिल की धड़कन और भी तेज़ हो गई। उसकी चाल में भी कुछ असाधारणता आ गई। क्रमशः युवती के निकट पहुँच कर वह एक बार खाँसा।

युवती चौंक पड़ी। उसने मुड़कर देखा। सहसा उसका चेहरा गालों तक लाल हो गया। उसका मधुर चेहरा जैसे क्षण-भर के लिए कठोर-सा बन गया। इसी समय चण्ड ने हिम्मत करके पूछा--"क्या आप मुझे कृपा कर यह बता सकती हैं कि महाराज कहाँ हैं ?"

युवती ने मानो चण्ड का प्रश्न सुना ही नहीं। खूब गम्भीर होकर, कठोर स्वर में किन्तु संयत भाव से उसने कहा--"आप यहाँ, मेरी जगह किस अधिकार से चले आए ?"

नवयुवक सम्राट् चण्ड इस तेजस्वी तरुणी के सामने निष्प्रभ-सा हो गया। उसने अपराधीकी-सी आवाज़ में इतना ही कहा--"मुझे महाराज से मिलने के लिए इसी जगह बुलाया गया था।"

इतना कहकर चण्ड वापस लौट चला। लता कठोर-सी मुद्रा धारण किए अभी तक उसकी ओर देख रही थी। हतप्रभ-सा होकर चण्ड आगे बढ़ा चला जा रहा था, मगर कुछ ही कदम चलने पर जैसे सहसा उसे अपनी कोई भूल याद हो आई--उसने युवती से क्षमा तो माँगी ही नहीं !

चण्ड पुनः लता की ओर लौट चला। इस समय तक वह फिर किसी दूसरी ओर देखने लगी थी। चण्ड के पैरों की आवाज़ सुनकर लता ने अपना मुँह उसकी ओर फेरा। अब उसके चेहरे पर उतनी कठोरता के भाव नहीं थे।

निकट आकर सम्राट् चण्ड ने अपने जीवन में पहली बार क्षमा-याचना की--"इस तरह अचानक आपके स्थान पर चले आने के लिए मैं

आप से क्षमा चाहता हूँ। परन्तु--"

लता ने अब ज़रा नरम आवाज़ में बीच ही में पूछ लिया--"आख़िर आप आ कहाँ से रहे हैं? कुछ अपना परिचय भी तो दीजिए!"

नवयुवक ने कहा--"मैं बड़ी दूर से आ रहा हूँ। मेरा नाम चण्ड है।"

युवती ने अपने सिर का आवरण ठीक कर लिया। उसके चेहरे पर अब सम्मानयुक्त लज्जा का-सा भाव भी दिखाई देने लगा। अपनी आँखें झुकाकर उसने कहा--"ओ हो, आप ही सम्राट् चण्ड हैं?"

चण्ड भला इस बात का क्या जवाब देता!

युवती ने स्वयं ही कहना शुरू किया--"आपसे भूल हुई। यह उद्यान तो मेरा व्यक्तिगत निवास-स्थान है। यहाँ पिताजी कभी राजकार्य नहीं करते।"

चण्ड ने कहा--"आपके प्रधानमन्त्री महाशय स्वयं मुझे यहाँ पहुँचा गए थे।"

लता ने स्थिर स्वर में ज़रा अधिकार के साथ कहा--"उनसे ग़लती हुई। मैं उनसे कहलवा दूँगी कि भविष्य में वह कभी ऐसी ग़लती न करें।"

चण्ड अब भी यह पूछने का साहस न कर सका कि महाराज इस समय कहाँ होंगे। मित्र के इस अनोखे व्यवहार से उसके हृदय में हल्की-सी नाराज़गी का भाव भी पैदा हो गया। इसी समय लता ने और भी अधिक कोमल स्वर में कहा--"आइए, आप इस लताकुंज में बैठिए। मैं पिता जी को यहाँ ही बुला भेजती हूँ।"

नवयुवक सम्राट् इस तेजस्वी तरुणी के पीछे-पीछे लताकुंज की ओर बढ़ने लगे। कुंज में इस समय तक कुछ अंधेरा हो गया था। लता ने कहा--"न हो, आइए, तब तक बाहर खड़े होकर यहाँ के सूर्यास्त का दृश्य ही देखिए।"

दोनों कुंज के बाहर घास से मढ़े हुए एक स्थान पर आकर चुपचाप खड़े हो गए।

सौन्दर्य के इस अनोखे षड्यन्त्र में मानो प्रकृति भी इस समय पूरा

साथ दे रही थी। वन का श्यामलपन, आकाश की लालिमा और झील के शान्त चाँदी-से वक्षस्थल की चमक, ये सभी जैसे और-भी अधिक गहरे हो गए। बाग़ के पौधे इस समय धीरे-धीरे अन्धकारमग्न होते जा रहे थे। परन्तु उनके फूल अब और भी अधिक उजले दिखाई देने लगे। फूलों की महक और भी बढ़ गई। ठंडी और सुगन्धित हवा का एक झोंका आया और इन दोनों--नवयुवक और नवयुवती--के शरीर-भर में एक सिहरन-सी उत्पन्न कर गया।

इसी समय लता ने कोमल स्वर में पूछा--"आपको हमारा यह देश पसन्द आया ?"

चण्ड ने आँखें उठाकर लता के चेहरे की ओर देखा। सूर्य की अन्तिम किरणों ने इस समय सम्पूर्ण विश्व को सुनहला-सा बना दिया था। चण्ड ने देखा--लता उसे एक ऐसी सुघटित स्वर्ण प्रतिमा के समान जान पड़ी, जिसमें फूलों की-सी कोमलता और सुगन्ध भी हो। उसने कहा--"काश्मीर के सौन्दर्य की चर्चा मैं बचपन से सुनता था। परन्तु वह इतना अधिक सुन्दर होगा, इसकी मुझे कल्पना भी न थी।"

लता ने पूछा--"और आपका देश कैसा है ?"

अपने देश की बात सुनकर क्षण-भर के लिए चण्ड को अपनी माता, अपनी बहन की याद हो आई। उसे ख़याल आया कि यदि विमला इस कन्या को देख पाती ! चण्ड की आँखों मे आह्लाद चमक उठा। उसने बड़े निष्कपट भाव से कहा--"क्या आप उसे देखना पसन्द करेंगी ? मेरा देश तो--"

परन्तु लता ने बीच ही में टोककर कहा--"वह देखिए, पिताजी आ रहे हैं। अच्छा प्रणाम।"

(६)

चण्ड अपने साथ जो बड़ी फौज लाया था, वह उसकी बरात के जुलूस की शोभा बढ़ाने के अतिरिक्त और किसी काम न आ सकी। चण्ड

के सैनिकों के अस्त्र-संचालन की निपुणता देख कर काश्मीर-निवासियों का खब मनोरंजन हुआ।

तीन ही दिन बाद लता और चंड का विवाह हो गया।

विवाह के चौथे दिन पूर्णिमा की रात थी। नववधू सम्राज्ञी लता अपने उद्यान के उसी कुञ्ज में बैठकर मधुर स्वर से कोई निशीथ गीत गा रही थी, और पास ही बैठे हुए सम्राट् चण्ड तन्मय होकर उसे सुन रहे थे। उद्यान के नीचे, जल के जिस भाग मे चाँद की ज्योत्स्ना प्रतिबिम्बित हो रही थी, वह भाग कुञ्ज के द्वार मे से, एक विशाल और उजले परदे के समान प्रतीत हो रहा था। सभी ओर. अनुपम सौन्दर्य बरस रहा था और इस सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए थी शीलता, स्निग्धता और सुगन्ध। रात का सन्नाटा। उस पर लता का वह मादक संगीत। चंड को अनुभव हुआ, जैसे वह एक नए लोक मे आ पहुँचा है।

संगीत रुक गया, परन्तु उसके कम्पन वायुमंडल मे जैसे अब भी लटक रहे थे। कुछ क्षणों तक चंड मोहित-सी दशा में चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद मानो वह होश में आ गया। उसने कहा--"लता, तुम्हें मालूम है कि मै यहाँ किस उद्देश्य से आया था ?"

"मालूम है।"

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

"यह सब क्या हो गया ! "

"अब भी तो तुम्हारी ही विजय रही।"

"सम्भव है कि मै ही जीता होऊँ। परन्तु यदि जीता भी हूँ, तो वह भी तुम से हार कर !"

इसी समय, पास ही से, चिनार के एक विशाल वृक्ष की शाखाओं में से किसी निशीथ युगलपक्षी का बेचैनीभरा शब्द सुनाई दिया। निशीथ-पक्षियों की इस आवाज़ से रात का सन्नाटा मानो और भी अधिक गहरा हो

गया। वह अनन्त सौन्दर्य, वह गहरा सन्नाटा और वह भीनी-भीनी सुगन्ध ! इन सब के बीचोंबीच सौन्दर्य की जीवित आत्मा के समान एक नव-विवाहित दम्पती ! बस ![1]

---

१ इस कथानक की रेखा (भाव नहीं) और दो नाम 'दीपाकर सारातुष्टी:' नामक संस्कृत की प्राचीन कृति से लिए गए है।

हूक

जब तक गाड़ी नहीं चली थी, बलराज जैसे नशे में था। यह शोरगुल से भरी दुनिया उसे एक निरर्थक तमाशे के समान जान पड़ती थी। प्रकृति उस दिन उग्र-रूप धारण किए हुए थी। लाहौर का स्टेशन। रात के साढ़े नौ बजे। कराची एक्सप्रेस जिस प्लैटफार्म पर खड़ा था, वहाँ हज़ारों मनुष्य जमा थे। ये सब लोग बलराज और उसके साथियों के प्रति, जो जान-बूझकर जेल जा रहे थे, अपना हार्दिक सम्मान प्रकट करने आए थे। प्लेटफार्म पर छाई हुई टीन की छतों पर वर्षा की बौछारें पड़ रही थीं। धू-धू करके गीली और भारी हवा इतनी तेज़ी से चल रही थी कि मालूम होता था, वह इन सब सम्पूर्ण मानवीय निर्माणों को उलट-पुलट कर देगी; तोड़-फोड़ डालेगी। प्रकृति के इस महान् उत्पात के साथ-साथ जोश में आए हुए उन हज़ारों छोटे-छोटे निर्बल-से देहधारियों का जोशीला कण्ठस्वर, जिन्हें 'मनुष्य' कहा जाता है।

बलराज राजनीतिक पुरुष नहीं है। मुल्क की बातों से या कांग्रेस से उसे कोई सरोकार नहीं। वह एक निठल्ला कलाकार है। माँ-बाप के पास काफ़ी पैसा है। बलराज पर कोई बोझ नहीं। यूनिवर्सिटी से एम० ए० का इम्तहान इज्ज़त के साथ पास कर वह लाहौर में ही रहता है। लिखता-पढ़ता है, कविता करता है, तसवीरें बनाता है और बेफिक्री से घूम-फिर लेता है। विद्यार्थियों में वह बहुत लोकप्रिय है। मां-बाप मुफ़स्सिल में रहते हैं, और बलराज को उन्होंने सभी तरह की आज़ादी दे रखी है।

ऐसा निठल्ला बलराज कभी कांग्रेस-आन्दोलन में सम्मिलित होकर

जेल जाने की कोशिश करेगा, इसकी उम्मीद किसी को नहीं थी। किसी को मालूम नहीं कि कब और क्यों उसने यह अनहोनी बात करने का निश्चय कर लिया। लोगों को इतना ही मालूम है कि बारह बजे के लगभग विदेशी कपड़े की किसी दूकान के सामने जाकर उसने दो-एक नारे लगाए; चिल्लाकर कहा कि विदेशी वस्त्र पहनना पाप है, और दो-एक भलेमानसों से प्रार्थना की कि वे विलायती माल न ख़रीदें। नतीजा यह आ कि वह गिरफ्तार कर लिया गया। उसी वक्त उसका मामला अदालत में पेश हुआ और उसे छः महीने की सादी सज़ा सुना दी गई। बलराज के मित्रों को यह समाचार तब मालूम हुआ, जब एक बन्द लारी में बैठाकर उसे मिण्टगुमरी जेल में भेजने के लिए स्टेशन की ओर रवाना कर दिया गया था।

लोग--विशेषकर कालेजों के विद्यार्थी--बलराज के जयजयकारों से आस्मान गुंजा रहे थे; परन्तु वह जैसे जागते हुए भी सो रहा था। चारों ओर का विक्षुब्ध वातावरण, आस्मान से गाड़ी की छत पर अनन्त वर्षा की बौछार और हज़ारों कण्ठों का कोलाहल--बलराज के लिए जैसे यह सब निरर्थक था। उसकी आँखों में गहरी निराशा की छाया थी, उसके मुँह पर विषादभरी गहरी गम्भीरता अंकित थी और उसके होंठ जैसे किसी ने सी दिए थे। उसके दोस्त उससे पूछते थे कि आख़िर क्या सोचकर वह जेल जा रहा है। परन्तु वह जैसे बहरा था, गूँगा था; न कुछ सुनता था, न कुछ बोलता था।

कांग्रेस के उन पन्द्रह-बीस स्वयंसेवकों में से बलराज एक को भी नहीं जानता था, और न उसके कपड़े ही ख़द्दर के थे। परन्तु उन सब वालंटियरों में एक भी व्यक्ति उसके समान पढ़ा-लिखा, प्रतिभाशाली और सम्पन्न घराने का नहीं था। इससे वे सब लोग बलराज को इज्ज़त की निगाह से देख रहे थे। गाड़ी चली तो उन सब ने मिलकर कोई गीत गाना शुरू किया और बलराज अपनी जगह से उठ कर दरवाज़े के सामने जा खड़ा हुआ। डिब्बे की सभी खिड़कियाँ बन्द थीं। बलराज ने दरवाज़े पर की

खिड़की खोल डाली। एक ही क्षण में वर्षा की थपेड़ों से उसका सम्पूर्ण मुँह भीग गया, बाल बिखर गए; मगर बलराज ने इसकी परवा नहीं की। खिड़की खोले वह उसी तरह खड़े रहकर बाहर के घने अन्धकार की ओर देखने लगा, जैसे इस सघन अन्धकार में बलराज के लिए कोई गहरी मतलब की बात छिपी हुई हो।

एक स्वयंसेवक ने बड़ी इज्जत के साथ बलराजसे कहा—"आप बुरी तरह भींग रहे हैं। इच्छा हो, तो इधर आकर लेट जाइए।"

बलराज ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। परन्तु जिस निगाह से उसने उस स्वयंसेवक की ओर देखा, उससे फिर किसी को यह हिम्मत नहीं हुई कि वह उससे कोई और अनुरोध कर सके।

खिड़की में से सिर बाहर निकाल कर बलराज देख रहा है। उस घने अन्धकार में, न-जाने किस-किस दिशा से आ-आकर वर्षा की तीखी-तीखी बूँदें उसके शरीर पर पड़ रही हैं। न जाने किधर की सनसनाती हुई हवा उसके बालों को झटके दे-देकर कभी इधर और कभी उधर हिला रही है।

इस घने अन्धकार में, जैसे बिना किसी बाधा के, बलराज ने एक गहरी साँस ली। उसकी इस बाधा-विहीन ठंडी साँस ने जैसे उसकी आँखों के द्वार भी खोल दिए। बलराज की आँखों में आँसू भर आए और प्रकृति-माता के आँचल का पानी मानो तत्परता के साथ उसके आँसुओं को धोने लगा।

इसके बाद बलराज को कुछ जान नहीं पड़ा कि किसने, कब और किस तरह धीरे से उसे एक सीट पर लिटा दिया। किसी तरह की बाधा दिए बिना वह लेट गया, और उसी क्षण उसने आँखें मूंद लीं।

[२]

चार साल पहले की बात है।

पहाड़ पर आए बलराज को अधिक दिन नहीं हुए। वह अकेला ही यहाँ चला आया था। अपने होटल में दोपहर का भोजन कर, रात की

पोशाक पहन, वह अभी लेटा ही था कि उसे दरवाज़े पर थपथपाहट की आवाज़ सुनाई थीं। बलराज चौंक कर उठा और उसने दरवाज़ा खोल दिया। उसका खयाल था कि शायद होटल का मैनेजर किसी ज़रूरी काम से आया होगा, अथवा कोई डाक-वाक होगी। मगर नहीं, दरवाज़े पर एक महिला खड़ी थी--बलराज की रिश्ते की बहन। वह यहाँ मौजूद है, यह तो बलराज को मालूम था; परन्तु उसे बलराज का पता कैसे ज्ञात हो गया, इस सम्बन्ध में वह अभी कुछ भी सोच नहीं पाया था कि उसकी निगाह एक और लड़की पर पड़ी, जो उसकी बहन के साथ थी। बलराज खुली तबीयत का युवक नहीं है; फिर भी उस लड़की के चेहरे पर उसे एक ऐसी पवित्र मुसकान-सी दिखाई दी, जो मानो पारदर्शक थी। इस मुस्कराहट की ओट में जो हृदय था, उसकी झलकसाफ-साफ देखी जा सकती थी। बलराज ने अनुभव किया, जैसे इस लड़की को देखकर उसका चित्त आह्लाद से भर गया है।

उसी वक्त आग्रह के साथ वह उन दोनों को अन्दर ले गया। कुशल-क्षेम की प्रारम्भिक बातों के बाद बलराज की बहन ने उस लड़की का परिचय दिया--"यह कुमारी ऊषा है। अभी कालेज के द्वितीय-वर्ष में पढ़ रही है।"

बलराज की बहन क़रीब एक घंटे तक वहाँ रही। सभी तरह की बातें उसने बलराज से कीं; परन्तु ऊषा ने इस सम्पूर्ण बातचीत में ज़रा भी हिस्सा नहीं लिया। अपनी आँखें नीची कर और अपने मुँह को कोहनी पर टेककर वह लगातार मुसकराती रही, बे बात के हँसती रही और मानो फूल बिखेरती रही।

:o: :o: :o:

तीसरे दर्जे की लकड़ी की सीट पर लेटे-लेटे बलराज अर्धचेतना में देख रहा है, चार साल पहले के एक स्वच्छ दिन की दोपहरिया। होटल में सन्नाटा है। कमरे में तीन जने हैं। बलराज है। उसकी बहन है, और सैकण्ड यीअर में पढ़ने वाली सत्रह बरस की ऊषा है। बलराज अपने पलंग

पर एक चादर ओढ़े बैठा है, उसकी बहन बातें कर रही है, ऊषा मुस-करा रही है। सिर्फ मुसकरा रही है; परन्तु लगातार मुसकराये जा रही है।

कुछ ही दिन बाद की बात है। ऊषा की माँ ने बलराज और उसकी बहन को अपने यहाँ चाय के लिए निमन्त्रित किया। बलराज ने अब ऊषा को अधिक नज़दीक से देखा। उसकी बहन उसे ऊषा के कमरे में ले गई। तीसरी मंज़िल के बीचोंबीच साफ़-सुथरा छोटा-सा एक कमरा था; एक तरफ़ सितार, वायलिन आदि कुछ वाद्य-यन्त्र रखे हुए थे। दूसरी ओर एक तिपाई पर कुछ किताबें अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी थीं। इस तिपाई के पास एक कुर्सी रखी थी। बलराज को इस कुर्सी पर बैठाकर उसकी बहन और ऊषा पलंग पर बैठ गईं।

चाय में अभी देर थी, और ऊषा की अम्मा रसोई-घर में थी। इधर बलराज की बहन ने पढ़ाई-लिखाई के सम्बन्ध में ऊषा से अनेक तरह के सवाल करने शुरू किए, उधर बलराज की निगाह तिपाई पर पड़ी हुई एक कापी पर गई। कापी खुली पड़ी थी। गणित के ग़लत या सही सवाल इन पन्नों पर हल किए गए थे। इन सवालों के आस-पास जो खाली जगह थी, उस पर स्याही से बनाए गए अनेक चेहरे बलराज को नज़र आए--कहीं सिर्फ़ आँख थीं, कहीं नाक और कहीं मुँह। जैसे आकृति चित्रण का अभ्यास किया जा रहा हो। बलराज ने यह सब एक उड़ती निगाह से देखा, और यह देखकर उसे सचमुच आश्चर्य हुआ कि १७ बरस की ऊषा आकृति-चित्रण में इतनी कुशल है।

हिम्मत कर बलराज ने कापी का पृष्ठ पलट दिया। दूसरे ही पृष्ठ पर एक ऐसा पोपला चेहरा अंकित था, जिसके सारे दाँत ग़ायब थे। चित्र सचमुच बहुत अच्छा बना था। उसके नीचे सुडौल अक्षरों में लिखा था--"गणितज्ञ"। बलराज के चेहरे पर सहसा मुस्कराहट घूम गई। इसी समय ऊषा की भी निगाह बलराज पर पड़ी। उसी क्षण वह सभी कुछ

समझ गई। बातचीत की ओर से उसका ध्यान हट गया और लज्जा से उसका मुँह नीचे की ओर झुक गया।

तभी बलराज की बहन ने अपने भाई से कहा––"ऊषा को लिखने का शौक भी है। तुमने भी उसकी कोई चीज़ पढ़ी है ?"

बलराज ने उत्सुकतापूर्वक कहा––"कहाँ ? जरा मुझे भी तो दिखाइए।"

ऊषा अभी तक इस बात का कोई जवाब दे नहीं पाई थी कि बलराज ने किताबों के ढेर में से एक कापी और खींच निकाली। यह कापी अंग्रेजी अनुवाद की थी। इस अनुवाद में भी खाली जगह का प्रयोग हाथ, नाक, कान, मुंह आदि बनाने में किया गया था। बलराज पृष्ठ पलटता गया। एक जगह उसने देखा कि 'मेरा घर' शीर्षक एक सुन्दर गद्य-कविता ऊषा ने लिखी है। बलराज ने उसे एक ही निगाह में पढ़ लिया। पढ़कर उसने सन्तोष की एक साँस ली, प्रशंसा के दो-एक वाक्य कहे और इसी सम्बन्ध में अनेक प्रश्न ऊषा से कर डाले।

पन्द्रह-बीस मिनट इसी प्रकार निकल गए। उसके बाद किसी काम से ऊषा को नीचे चले जाना पड़ा। बलराज ने तब एक और छोटी-सी नोट-बुक उस ढेर में से खोज निकाली। इस नोट-बुक के पहले पृष्ठ पर लिखा था––'निजी और व्यक्तिगत'। मगर बलराज इस कापी को देख डालने के लोभ का संवरण न कर सका। कापी के सफ़े उसने पलटे। देखा, एक जगह बिना किसी शीर्षक के लिखा था––

"ओ मेरे देवता !

"तुम कौन हो, कैसे हो, कहाँ हो––मैं यह सब कुछ भी नहीं जानती; मगर फिर भी मेरा दिल कहता है कि सिर्फ़ तुम्हीं मेरे हो, और मेरा कोई भी नहीं !

"रात बढ़ गई है। मैंने अपनी खिड़की खोल डाली है। चारों ओर गहरा सन्नाटा है। सामने की ऊँची पहाड़ी की बरफ़ीली चोटियाँ चांदनी में चमक रही है। घर के सब लोग सो गए है। सारा नगर सो गया

है; मगर मैं जाग रही हूँ। अकेली मैं। पढ़ना चाहती थी; मगर और नहीं पढ़ूँगी। पढ़ नहीं सकूँगी। सो भी नहीं सकूँगी। क्यों? क्योंकि उन बर्फ़ीली चोटियों पर से तुम मुझे पुकार रहे हो! मैंने तो तुम्हारी पुकार सुन ली है; परन्तु मन-ही-मन तुम्हारी उस पुकार का मैं जो जवाब दूँगी उसे क्या तुम भी सुन सकोगे, ओ मेरे देवता?"

वह पृष्ठ समाप्त हो गया। बलराज अगला पृष्ठ पलट ही रहा था कि ऊषा कमरे में आ पहुँची। बलराज के हाथ मे वह कापी देखकर वह तड़प-सी उठी। सहसा बलराज के बहुत निकट आकर और अपना हाथ बढ़ाकर उसने कहा—"माफ़ कीजिए। यह कापी मैं किसी को नहीं दिखाती। यह मुझे दे दीजिए।"

बलराज पर मानो घड़ों पानी पड़ गया, और स्तब्ध-सी दशा मे उसने वह कापी ऊषा के हाथों मे दे दी।

अपनी उद्विग्नता पर मानो ऊषा अब लज्जित-सी हो उठी। उसने वह कापी बलराज की ओर बढ़ाकर ज़रा नरमी से कहा—"अच्छा, आप देख लीजिए। पढ़ लीजिए। मैं आपको नहीं रोकूँगी।" और यह कहकर नोट-बुक उसने बलराज के सामने रख दी। मगर बलराज अब उस कापी को हाथ लगाने की भी हिम्मत नहीं कर सका।

उसके बाद बलराज ही के अनुरोध पर ऊषा ने गाकर भी सुना दिया। अनेक चुटकले सुनाए। वह जी खोलकर हँसती भी रही; मगर सत्रह बरस की इस छोटी-सी बालिका के प्रति, ऊपर की घटना से, बलराज के हृदय में सम्मानपूर्ण दहशत का जो भाव पैदा हो गया था, वह हटाए न हट सका।

:o: :o: :o:

वर्षा की बौछार के कुछ छींटे सोये हुए बलराज के नंगे पैरों पर पड़े। शायद उसे कुछ सरदी-सी प्रतीत हुई। वह देखने लगा—सबसे ऊँची मंज़िल के ठीक बीचोंबीच एक कमरा है। कमरे के मध्य में एक खिड़की है। इस खिड़की में से बलराज सामने की ओर देख रहा है। चाँदनी रात

है। मकान में, सड़क पर, नगर में--सभी जगह सन्नाटा है। सामने की पहाड़ी की बर्फ़ीली चोटी चाँदनी मे चमक रही है। रह-रह कर ठंडी हवा के झोंके खिड़की की राह से कमरे मे आते है और बलराज के शरीर-भर में एक सिहरन-सी उत्पन्न कर जाते है। सहसा दूर पर वीणा की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। बलराज ने देखा, चमकती हुई बर्फ़ीली चोटी पर एक अस्पष्ट-सा चेहरा दिखाई देने लगा है। यह चेहरा तो उसका देखा-भाला हुआ है। बलराज ने पहचाना--ओह, यह तो ऊषा है। आज की नहीं; आज से चार साल पहले की। वीणा की ध्वनि क्रमशः और भी अधिक करुण हो उठी। वह मानो पुकार-पुकार कर कहने लगी--'ओ मेरे देवता! ओ मेरे देवता!'

(४)

दूसरे ही दिन बलराज की बहन ने उसे सिनेमा देखने के लिए निमन्त्रित किया। ऊषा भी साथ ही थी। भयानक-रस का चित्र था। बोरिस कारलोफ़का फ्रैंकन्स्टाइन। बलराज मध्य मे बैठा। उसकी बहन एक ओर, और ऊषा दूसरी ओर। खेल शुरू होने मे अभी कुछ देर थी। बातचीत में बलराज को ज्ञात हुआ कि ऊषा ने अभी तक अधिक फिल्म नहीं देखे है और न उसे सिनेमा देखने का कोई विशेष चाव ही है।

खेल शुरू हुआ। सचमुच डरानेवाला। श्मशान से मुर्दा खोदकर लाया जाना; प्रयोगशाला मे सूखे हुए शव की मौजूदगी, अकस्मात् मुर्दे का जी उठना--यह सभी कुछ डराने वाला था। बालिका ऊषा का किशोर हृदय धक्-धक् करने लगा, और क्रमशः वह अधिकाधिक बलराज के निकट होती चली गई।

आख़िरकार एक जगह वह भय से सिहर-सी उठी और बहुत अधिक विचलित होकर उसने बलराज का हाथ पकड़ लिया। फ्रैंकन्स्टाइन ने बड़ी निर्दयता से एक अबोध बालिका का खून कर दिया था। ऊषा के काँपते हुए हाथ के स्पर्श से बलराज को ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसके शरीर-भर में प्राणदायिनी बिजली-सी घूम गई हो। उसने बालिका के हाथ को बड़ी

नरमी के साथ थोड़ा-सा दबाया। ऊषा ने उसी क्षण अपना हाथ वापस खींच लिया।

खेल समाप्त हुआ। बलराज ने जैसे इस खेल में बहुत-कुछ पा लिया हो; परन्तु प्रकाश मे आकर जब उसने ऊषा का मुँह देखा, तो उसे साफ़ दिखाई दिया कि बालिका के चेहरे पर हल्की-सी सफ़ेदी आ जाने के अतिरिक्त और कोई भी अन्तर नहीं आया। उसकी आँखे उतनी ही पवित्र, उजली और अबोध थीं, जितनी खेल शुरू होने से पहले। उत्सुकता को छोड़ कर और किसी भाव का उसके चेहरे पर लेशमात्र भी चिह्न नहीं था। बलराज ने यह देखा और देखकर जैसे वह कुछ लज्जित-सा हो गया।

:o: :o: :o:

गाड़ी एक स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई। बलराज कुछ उनींदा-सा हो गया। उसकी आँखें ज़रा-ज़रा खुली हुई थीं। सामने की सीट पर एक दढ़ियल सिपाही अजीब ढंग से मुँह बनाकर उबासियाँ ले रहा था। बलराज को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे फ्रैंकन्स्टाइन का भूत सामने से चला आ रहा है। लैम्प के निकट से एक छोटी-सी तितली उड़ी और बलराज के हाथ को छूती हुई नीचे गिर पड़ी। बलराज को अनुभव हुआ, मानो ऊषा ने उसका हाथ पकड़ा है। बहुत दूर से इंजन की सीटी सुनाई दी। बलराज को ऐसा जान पड़ा, जैसे ऊषा चीख़ उठी हो। उसके शरीर-भर में एक कम्पन-सा दौड़ गया। मुमकिन था कि बलराज की नींद उचट जाती; परन्तु इसी समय गाड़ी चलने लगी और उसके हल्के-हल्के झूलों ने उसके उनींदेपन को दूर कर दिया।

(५)

शरमीली तबीयत का होते हुए भी बलराज काफ़ी सामाजिक है। अपरिचित या अल्पपरिचित लोगों से मिलना-जुलना और उनपर अच्छा प्रभाव डाल सकना उसे आता है; परन्तु न-जाने क्या कारण है कि ऊषा के सामने आकर वही बलराज कुछ भीगी बिल्ली सा बन जाता है। ऊषा अब लाहौर के ही एक कालेज में एम० ए० में पढ़ रही है। अब वह

सुसंस्कृत, सभ्य और सामाजिक नवयुवति बन गई है। बलराज अब किसी कालेज में नहीं पढ़ता, फिर भी स्थानीय कालेजों के विद्यार्थियों में अत्याधिक लोकप्रिय है और विद्यार्थियों का नेता है, सभा-सोसाइटियों में खूब हिस्सा लेता है, बहुत अच्छा भाषण दे सकता है। वह कवि है, लेखक है, चित्रकार है और ऊषा भी जानती है कि वह भी कुछ है। इसी कारण वह बलराज को विशेष इज़्ज़त की निगाह से देखती है। परन्तु बलराज जब ऊषा के सामने पहुँचता है, तब वह बड़ी निराशा के साथ अनुभव करता है कि उसकी वह सम्पूर्ण प्रतिभा, ख्याति और वाक्‌शक्ति न-जाने कहाँ जाकर छिप गई है।

सूरज डूब चुका था और बलराज लारेन्स बाग़ की सैर कर रहा था। अँधेरा बढ़ने लगा, और सड़कों की बत्तियाँ एक साथ जगमगा उठीं। बाग़ में एक कृत्रिम पहाड़ी है। इस पहाड़ी के पीछे की सड़क पर अधिक आवागमन नहीं रहता। बलराज आज कुछ उदास और दुखी-सा था। वह धीरे-धीरे इसी सड़क पर बढ़ा चला जा रहा था।

इसी समय उसके नजदीक से एक ताँगा गुजरा। बलराज ने उड़ती निगाह से देखा, ताँगे पर दो युवतियाँ सवार हैं। अगले ही क्षण एक लड़की ने बलराज को प्रणाम किया। बलराज के शरीर भर में आह्लाद की लहर-सी घूम गई। ओह, यह तो ऊषा है। बलराज ने ऊषा के प्रणाम का कुछ इस तरह जवाब दिया, जिससे उसने समझ लिया कि जैसे वह उसे ठहरने का इशारा कर रहा है। ताँगा कुछ दूर निकल गया था, ऊषा ने ताँगा ठहरवा लिया और स्वयं उतर कर बलराज के निकट चली आई। आते ही बड़े सहज भाव से उसने पूछा--"कहिए, क्या बात है?"

बलराज को कुछ भी नहीं सूझा। उसने ताँगा ठहराने का इशारा बिलकुल नहीं किया था; परन्तु यह बात वह इस वक्त किस तरह कह सकता था? नतीजा यह हुआ कि बलराज ऊषा के चेहरे की ओर ताकता ही रह गया।

ऊषा कुछ हतप्रभ-सी हो गई। फिर भी, बात चलाने की गरज से

उसने कहा--"आपकी 'सराय पर' शीर्षक कविता मैंने कल पढ़ी थी। आपने कमाल कर दिया है।"

बलराज ने यों ही पूछ लिया--"आपको वह पसन्द आई ?"

"खूब।"

इसके बाद बलराज फिर चुप हो गया। जिस तरह तंग गले की बोतल ऊपर तक भर दी जाने के बाद, अपनी आन्तरिक प्रचुरता के कारण ही, उलटा देने पर भी खाली नहीं हो पाती, उसी तरह बलराज के हार्दिक भावों की घनता ही उसे मूक बनाए हुए थी।

ऊषा प्रणाम करके लौटने ही लगी थी कि बहुत धीरे से बलराज ने पुकारा--"ऊषा !"

ऊषा घूमकर खड़ी हो गई। मुँह से उसने कुछ भी नहीं कहा; परन्तु उसकी आँखों मे एक बड़ा-सा प्रश्नवाचक चिह्न साफ़ तौर से पढ़ा जा सकता था।

बलराज ने बड़ी शिथिल आवाज़ मे कहा--"आपको देखकर न-जाने मुझे क्या हो जाता है !"

ऊषा यह सुनने के लिए तैयार नहीं थी। फिर भी वह चुपचाप खड़ी रही।

क्षणभर रुककर बलराज ने कहा--"आप सोचती होंगी, यह अजब बेहूदा आदमी है। न हँसना जानता है, न बोलना जानता है; मगर सच मानिए. . . ."

बीच ही में बाधा देकर ऊषा ने कहा--"मै आपके बारे में कभी कुछ नहीं सोचती। मगर आपको यह होता क्या जा रहा है ?"

बलराज के चेहरे पर हवाइयाँ-सी उड़ने लगीं। उसे ऊषा के स्वर में कुछ कठोरता-सी प्रतीत हुई। तो भी बड़े साहस के साथ उसने कहा--"मै अपने आन्तरिक भाव व्यक्त नहीं कर सकता।"

ऊषा ने चाहा कि वह इस गम्भीरतम बात को हँसकर उड़ा दे; मगर कोशिश करने पर भी वह हँस नहीं सकी। वह कुछ भयभीत-सी हो गई।

उसने कहा--"मैं जाती हूं ।"

और वह घूमकर चल दी ।

बलराज एक कदम आगे बढ़ा । उसके जी में आया कि वह आगे बढ़कर ऊषा का हाथ पकड़ ले; परन्तु वह ऐसा कर नहीं सका ।

एक कदम आगे बढ़कर वह पीछे की ओर घूम गया । उसी वक्त तांगे पर से एक नारीकंठ सुनाई दिया--"ऊषा ! ऊषा !"

(६)

अभी परसों की ही बात है ।

गरमियों की इन छुट्टियों में लाहौर से विद्यार्थियों की दो टोलियां सैर के लिए चलने वाली थीं--एक सीमा-प्रान्त की ओर और दूसरी कुल्लू से शिमला के लिए । इस दूसरी टोली का संगठन बलराज ने किया था और वही इस टोली का मुखिया भी था ।

ऊषा के दिल में अभी तक बलराज के लिए आदर और सहानुभूति के भाव थे । बलराज के मानसिक अस्वास्थ्य को देखकर उसे सचमुच दुख होता था । वह अपने स्वाभाविक सहज व्यवहार द्वारा बलराज के इस मानसिक अस्वास्थ्य की चिकित्सा कर डालना चाहती थी । और सम्भवतः यही कारण था कि वह उसके साथ, अन्य दो-तीन लड़कियों समेत, कुल्लू-यात्रा पर जाने को भी तैयार हो गई थी ।

परन्तु अभी परसों की ही बात है । शाम के समय बलराज ने अपनी पार्टी के सभी सदस्यों को चाय पर निमन्त्रित किया । घंटे-दो-घंटे के लिए बलराज के यहां अच्छी चहल-पहल रही । हँसी-मजाक हुआ, गाना-बजाना हुआ और पर्वत-यात्रा के विस्तृत प्रोग्राम पर भी विचार होता रहा ।

चाय के बाद, जब सभी लोग चले गए, बलराज ऊषा को उसके निवास-स्थान तक पहुंचाने के लिए साथ चल दिया । ऊषा ने इस बात पर कोई आपत्ति नहीं की ।

माल रोड पर पहुँचकर बलराज ने प्रस्ताव किया कि तांगा छोड़ दिया जाए और पैदल ही लारेन्स बाग़ का चक्कर लगाकर घर जाया जाए ।

ऊषा ने यह प्रस्ताव भी बिना किसी बाधा के स्वीकार कर लिया।

दोनों जने ताँगे से उतरकर पैदल चलने लगे। ऊषा ने अनेक बार यह प्रयत्न किया कि कोई बात शुरू की जाए। बलराज भी आज अपेक्षा-कृत कम उद्विग्न प्रतीत हो रहा था। फिर भी कोई भी बात मानो चली नहीं, पनप ही नहीं पाई।

क्रमशः वे दोनों नकली पहाड़ी के पीछे की सड़क पर आ पहुँचे। इस समय तक साँझ डूब चुकी थी, और सड़कों पर की बत्तियाँ जगमगाने लगी थीं।

इस निस्तब्धता में दोनों जने चुपचाप चले जा रहे थे कि मौलश्री के एक घने पेड़ के नीचे पहुँचकर बलराज सहसा रुक गया।

ऊषा ने भी खड़े होकर पूछा—"आप रुक क्यों गए?"

बलराज ने कहा—"उस दिन की बात याद है?"

उसका स्वर भारी होकर लड़खड़ाने लगा था। ऊषा कुछ घबरा-सी गई। बात टाल देने की गरज से उसने कहा—"चलिए, वापस लौट चला जाए। देर हो गई है।"

मगर बलराज अपनी जगह से नहीं हिला। मालूम होता था कि उसके दिल में कोई चीज़ इतनी ज़ोर से समा गई है कि वह उसका दम घोंटने लगी है। बलराज के चेहरे पर पसीने की बूँदें चमकने लगीं। काँपते हुए स्वर में उसने कहा—"ऊषा! अगर तुम जानतीं कि मैं दिन-रात क्या सोचता रहता हूँ!"

ऊषा अब भी चुप थी। उसके हृदय में विद्रोह की आग भभक उठी; मगर फिर भी वह चुपचाप खड़ी रही, सहन करती रही।

बलराज ने फिर से कहा—"ऊषा! तुम मुझ पर तरस खाओ। मुझ पर नाराज मत होओ।"

ऊषा ने कठोर और दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं मालूम आपको क्या हो गया है। अगर आपने एक भी बात इस तरह की और कही, तो मैं आपसे कभी नहीं बोलूँगी।"

बलराज यह सुनकर भी सम्हल नहीं सका। उसकी आँखों मे आँसू भर आए और बड़े अनुनय के साथ उसने ऊषा का हाथ पकड़ लिया।

ऊषा ने तड़प कर अपना हाथ छुड़ा लिया और शीघ्रता से एक तरफ को बढ़ चली। चलते हुए, बहुत ही निश्चयपूर्ण स्वर मे वह कहती गई-- "मै आपके साथ कुल्लू नहीं जाऊँगी।"

कुछ ही दूरी पर ऊषा को एक खाली तांगा मिला। उस पर सवार होकर वह अपने घर की ओर चली गई।

अगले दिन सुबह बलराज ने अपनी पार्टी के सभी सदस्यों के नाम इस बात की सूचना भेज दी कि वह कुल्लू नहीं जा सकेगा। किसी को मालूम भी नहीं हो पाया कि माजरा क्या है और सम्पूर्ण पार्टी बरख़ास्त हो गई।

सीमा-प्रान्त की ओर जाने वाली पार्टी आज सुबह की गाड़ी से ही पेशावर के लिए रवाना हुई है। अब से सिर्फ १४ घंटे पहले। इस पार्टी को विदा देने के लिए बलराज भी स्टेशन पर पहुँचा था। ऊषा भी इसी पार्टी के साथ गई है। अपने माँ-बाप से यात्रा पर जाने की अनुमति प्राप्त कर कहीं भी न जाना उसे उचित प्रतीत नहीं हुआ। आज सुबह लाहौर स्टेशन पर ही बलराज ने इस पार्टी को कई तरह की नसीहतें दी थीं। किसी को उसके आचरण में ज़रा भी असाधारणता प्रतीत नहीं हुई थी। परन्तु गाड़ी चलने से पहले ही, चुपचाप सबसे पृथक होकर वह तीसरे दर्जे के मुसाफिरों की भीड़ में जा मिला था।

बलराज स्टेशन से बाहर आया, तो दुनिया जैसे उसके लिए अन्धकार-पूर्ण हो गई थी। आस्मान में सूरज बिना किसी बाधा के चमक रहा था। सड़कों पर लोग सदा की तरह आ-जा रहे थे। दुनिया के सभी कारोबार उसी तरह जारी थे; परन्तु बलराज के लिए जैसे सभी ओर सूनापन व्याप्त हो गया था। कहीं कुछ भी आकर्षण बाक़ी न रहा था। सभी कुछ नीरस, फीका—बिल्कुल फीका हो गया था।

सड़क के किनारे फुटपाथ पर, बलराज धीरे-धीरे बिलकुल निरुद्देश्य भाव से चला जा रहा है। हज़ारों, लाखों मनुष्यों से भरी यह नगरी बलराज

के लिए जैसे बिलकुल निर्जन और सुनसान बन गई है ।रह-रह कर जो इतने लोग उसके निकट से निकल जाते है, उसकी निगाह में जैसे बिलकुल व्यर्थ और निर्जीव हैं; चलती-फिरती पुतलियों से बढ़कर और कुछ भी नहीं ।

एक खाली ताँगा बड़ी धीमी रफ्तार से चला आ रहा था । उसका कोचवान बड़ी मस्त और करुण-सी आवाज़ मे गाता चला आता था--

"दो पत्तर अनाराँ दे !

फट मिल जांदे, बोल न जांदे यारां दे !

दो पत्तर अनाराँ दे,

सड़ गई जिन्दड़ी, लग गए ढेर अंगारां दे !"*

बलराज ने यह सुना और उसके दिल मे एक गहरी हूक-सी उठ खड़ी हुई । निष्प्रयोजन वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला गया, और अन्त मे अनायास ही उसने अपने को विदेशी कपड़ों की एक दूकान के सामने पाया, जहाँ कांग्रेस के कुछ स्वयंसेवक पिकेटिंग कर रहे थे ।

:o: :o: :o:

गाड़ी उड़ी चली जा रही है, और बलराज सपना देख रहा है । दुनिया के किसी एक कोने मे मौलश्री का एक बहुत बड़ा पेड़ है । अकेला-- बिलकुल अकेला । चारों ओर सघन अन्धकार है । सिर्फ़ इसी वृक्ष के ऊपर-नीचे, आसपास उजाला है । चारों तरफ़ क्या है, कुछ है या भी नहीं--कुछ नहीं मालूम । ठण्डी, सनसनाती हुई हवा चल रही है । पेड़ के पत्ते ऊँची आवाज़ मे इस तरह साँय-साँय कर रहे है, जैसे रेलगाड़ी भागी जा रही हो । इस पेड़ के नीचे सिर्फ दो ही व्यक्ति है--ऊषा और बलराज ।

*"अनार के दो पत्ते !

शारीरिक घाव भर जाते है, पर मित्र के ताने का घाव कभी नहीं भरता !

अनार के दो पत्ते !

मेरा जीवन जल गया है और उसमे अंगारों के ढेर लग गए है !"

ऊषा बलराज से बहुत दूर हटकर बैठना चाहती है; परन्तु बलराज उसका पीछा करता है। वह जिधर जाती है, धीरे-धीरे उसी की ओर बढ़ने लगता है। ऊषा कहती है—"मेरे निकट मत आओ!" परन्तु बलराज नहीं सुनता। वह बढ़ता चला जाता है, और अन्त में लपककर ऊषा को पकड़ लेता है। ऊषा उससे बहुत नाराज़ हो गई है। वह कहती है, मैं तुम्हें अकेला छोड़ जाऊँगी। सदा के लिए, अनन्त काल के लिए। फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगी। बलराज उससे माफ़ी माँगता है; गिड़गिड़ाता है; परन्तु वह नहीं सुनती। चल देती है। एक तरफ़ को। गहरे अन्धकार मे। बलराज चिल्ला रहा है, पर ऊषा उसकी पुकार सुने बिना अन्धकार मे विलीन होती जा रही है।

गाड़ी की रफ्तार बहुत धीमी हो गई। उनींदी-सी दशा मे बलराज बड़े ही कातर स्वर में धीरे-से पुकार उठा—"ऊषा! ऊषा! तुम लौट आओ, ऊषा!"

इसी वक्त एक सिपाही ने चिल्ला कर कहा—"उठो। मिण्टगुमरी का स्टेशन आ गया!"

बलराज चौंककर उठ बैठा। उसने देखा, रात के दो बजे है और उसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई है।

'इन्कलाब जिन्दाबाद!' और 'महात्मा गांधी की जय!' के नारों से मिण्टगुमरी के रेलवे स्टेशन का प्लेटफार्म रात के गहरे सन्नाटे मे भी सहसा गूँज उठा।

दो कब्रें

"साहब ! ज़रा संभल कर चलिए। यह वही जगह है, जहाँ से फिसल कर महान् विजेता बादशाह मोहम्मद हसन को अपने प्राण गँवाने पड़े थे !"

एक अनजान काश्मीरी युवक के मुँह से यह चेतावनी सुन कर मैं सचमुच घबरा गया। चढ़ाई सचमुच बहुत कठिन थी और रास्ते का कहीं नाम भी नहीं था। अपने स्वभाव से लाचार होकर साल में एक-आध बार इस तरह का खतरा मैं उठाया ही करता हूँ। आज भी एकाएक मैं गगरीबल झील से साथ ही की पहाड़ी की चोटी पर स्थित शंकराचार्य के मन्दिर की चढ़ाई उस ओर से चढ़ने लगा था जिस ओर पहाड़ एकदम कटा हुआ-सा प्रतीत होता है। दो पैरों और दो हाथों की मदद से बिना मार्ग की यह चढ़ाई करते-करते मैं एक ऐसी जगह आ पहुँचा, जहाँ न आगे बढ़ सकने की सम्भावना दिखाई देती थी, और न वापस उतर चलने की सुविधा ही। ऐसे समय वह काश्मीरी नवयुवक न जाने कहाँ से एकाएक आ प्रकट हुआ। मुझे घबराया हुआ देखकर उसने अपना एक हाथ मेरी तरफ़ बढ़ा दिया और तब उसके हाथ का सहारा लेकर बकरियों के खुरों द्वारा निर्मित कितने ही अदृश्य-प्राय पथचिह्नों पर अपने हाथ पैर टेकते हुए मैं अपेक्षाकृत सुगम स्थान पर आ पहुँचा।

ज्यों ही मैं कुछ बोल सकने की मनःस्थिति में आया, मैंने पूछा—"यह बादशाह मुहम्मद हसन कौन था दोस्त ?"

अपढ़-सा दीखने वाले उस काश्मीरी युवक ने बड़ी हैरानी से कहा—

"आप बादशाहों से बादशाह हसन का नाम भी नहीं जानते ?"

मुझे अपने अज्ञान पर कुछ झेंपता हुआ-सा देखकर उस युवक ने कहा--"उन ऊपर के देवदारों की छाया में नीली-सी वह जो कब्र दिखाई दे रही है न, वह बादशाह हसन की कब्र है। उससे कुछ ही नीचे एक काली-सी कब्र है, जो बादशाह अब्दुल उम्र की है। अब्दुल उम्र का नाम कभी सुना आपने ?"

मुझे अज्ञान से अपना सिर हिलाते देख कर उस काश्मीरी युवक को इस बार हैरानी नहीं हुई। जो आदमी नीली कब्र वाले बादशाह हसन का नाम नहीं जानता, वह काली कब्र वाले अब्दुल उम्र का नाम क्योंकर जानेगा ? नौजवान ने जैसे दिलासा देते हुए मुझ से कहा--"बस, थोड़ी-सी चढ़ाई और चढ़ लीजिए। इन कब्रों के नजदीक न सिर्फ ठंडी छाया है, अपितु ठंडे पानी का एक चश्मा भी मौजूद है। वहाँ पहुँच कर आपका परिचय दो ऐसे बादशाहों से कराया जाएगा, जो एक दिन जिन्दा होकर उठ बैठने के लिए ही यहाँ दफ़नाए गए थे।"

मुझे आश्चर्य से अपनी ओर ताकते देखकर उस युवक ने कहा--"अब आप कह दीजिए कि आप कयामत की बात भी नहीं जानते। कयामत के रोज़ सब मुर्दे ज़िन्दा होकर उठ खड़े होंगे न।" मैंने इस तरह सिर हिलाया, जैसे सब समझ गया हूँ।

और सचमुच ५-६ मिनट की चढ़ाई चढ़ लेने के बाद मैं एक अत्यन्त रमणीक स्थान पर आ पहुँचा। देवदार के ८-१० सघन वृक्षों के बीचोंबीच स्वच्छ जल का एक झरना बह रहा था। इस झरने के किनारे, दाहिनी ओर नीले रंग की एक बड़ी-सी कब्र थी, जिसके एक भाग पर वृक्षों की छाया थी और दूसरा भाग सांझ की धूप में चमक रहा था। इस कब्र के दाहिने भाग के साथ ही जैसे किसी ने पहाड़ी को काट डाला था और सैकड़ों फीट गहरा खड्ड दिखाई दे रहा था। इसी कब्र से करीब ५० फ़ीट नीचे काले रंग की एक छोटी-सी और कब्र थी, जिसे उस काश्मीरी नौजवान ने अब्दुल उम्र की कब्र बताया था।

न जाने कब से दफ़नाए गए उन दो महान बादशाहों से मेरा परिचय, मेरे उस काश्मीरी मित्र ने इन शब्दों में करवाया :

"यह देखिए, यहाँ इस नीली कब्र में, शाहों का शाह, विजयी मोहम्मद हसन सो रहा है। आज से कम-से-कम ५०० साल पहले की बात है। उस ज़माने में आपकी तरह कोई सैलानी जब चाहे सौ-पचास रुपया खर्च कर इस सुन्दर घाटी में नहीं पहुंच सकता था। आज की तरह तब न किसी ने ऊँचे पीर (पांचाल पर्वत) का पेट चीर कर टनल बनाया था और न किसी ने वेगवती जेलहम पर लोहे का दैत्याकार पुल खड़ा किया था। उस ज़माने में वही लोग काश्मीर आ पाते थे, जो जान पर खेल सकते हों और अपना सामान सिर पर लाद कर ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई कर सकते हों।

"उस ज़माने में बादशाह मोहम्मद हसन अपनी फौज और मय तोपखाने के काश्मीर की इस सुन्दर घाटी में न जाने किस तरह और किस मार्ग से आ पहुँचा।"

मैंने बीच ही में टोक कर सवाल किया—"मगर दोस्त, तुमने यह तो बताया ही नहीं कि यह मोहम्मद हसन किस मुल्क का बादशाह था।"

वह काश्मीरी नौजवान मेरे इस सवाल पर ज़रा भी नहीं झेंपा। बड़े इत्मीनान के साथ उसने कहा—"तुम उस महान् बादशाह का नाम तक तो जानते नहीं। तब उसके बारे में और बातें कहाँ से जानोगे ? अरे भाई, वह काश्मीर को छोड़कर और तमाम दुनिया का बादशाह था !"

मैंने कहा—"हूँ ! यह बात है !"

काश्मीरी नौजवान अब और भी अधिक उत्साह के साथ कहने लगा—"काश्मीर के बादशाह ने मोहम्मद हसन की फ़ौज का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया। मगर उसकी पेश न गई। पेश जाती भी किस तरह, जिसकी जिन्नाती ताकत के सामने पीर (पीर पांचाल पर्वत) हार गया, उसका मुकाबला इन्सान किस तरह कर सकता था ? ख़ैर, किस्सा कोताह यह कि दो दिनों की लड़ाई के बाद तीसरे दिन की सुबह बादशाह मुहम्मद

हसन ने श्रीनगर फतह कर लिया और काश्मीर के बादशाह ने उसके सामने हार मान ली।

"उसी रोज़ दोपहर के वक्त बादशाह मोहम्मद हसन का एक शानदार जुलूस श्रीनगर की सड़कों पर निकला। बादशाह को बताया गया कि इस शानदार शहर का नज़ारा देखने के लिए सब से अच्छी जगह यह तख्ते सुलेमान की चोटी है।

"उस ज़माने में तख्ते सुलेमान तक जाने की पगडंडी इसी ओर से थी। यह तो बाद में एक ज़लज़ले ने पहाड़ को इस तरह से काट दिया। ख़ैर, तो मैं कह रहा था कि बादशाह अपने कुछ चुने हुए अफसरों के साथ एक घोड़े पर सवार होकर इसी राह से चोटी की तरफ़ जा रहा था कि राह के बीचोंबीच अचानक घोड़े का पैर फिसल गया और घोड़ा और बादशाह दोनों खड्ड में जा गिरे।

"शहर भर में कोहराम मच गया, क्योंकि काश्मीर के वीरपूजक लोगों ने उस बहादुर बादशाह को अपने जी से अपना बादशाह मान लिया था। खड्ड में जाकर पाया गया कि घोड़ा तो उसी वक्त मर गया था, मगर बादशाह में अभी जान बाकी थी। पालकी पर डालकर ज़ख्मी बादशाह को महल में ले जाया गया। कितनी ही कोशिशें की गईं, मगर वे सब बेकार साबित हुईं। अगले ही दिन की सुबह बादशाह का अन्तकाल आ पहुँचा।

"मरने से पहले अपने वजीर के पूछने पर उसने अपनी एक ही ख्वाहिश ज़ाहिर की। और वह यह कि मैं अपने विजय किए हुए इस शानदार शहर को एक नज़र भी देख नहीं पाया। बरसों की मेहनत के बाद मैंने जो कुछ हासिल किया, खुदा की मर्ज़ी से उसे देख सकने तक का मौका मुझे नहीं मिला। इससे मेरी कब्र उसी ऊँचे पहाड़ के किसी ऐसे खूबसूरत हिस्से पर बनाई जाए, जहाँ से सारा शहर एक साथ दिखाई देता हो, ताकि कयामत के दिन जब मैं कब्र से उठूँ, तो मेरी पहली निगाह इस शानदार शहर पर पड़े, जिसे इस धरती का बहिश्त कहा जाता है।

"और उसी रोज महान विजयी बादशाह मोहम्मद हसन का जिस्म

इसी जगह दफ़ना दिया गया और उस पर यह नीली कब्र बना दी गई। आज भी वह महान् बादशाह इसी कब्र में लेटा हुआ कयामत के दिन का इन्तज़ार कर रहा है, जब वह नई ज़िन्दगी पाकर कब्र से उठेगा और अपने जीते हुए इस शानदार शहर को जी भर कर देखेगा !"

और क्षण भर के लिए वह विशालकाय नीला मज़ार मुझे किसी की कब्र न मालूम होकर किसी बादशाह के महल का नीला गुम्बद प्रतीत होने लगा, जिसके नीचे सचमुच का एक तेजस्वी बादशाह विद्यमान हो।

मुझे और अधिक सोचने का अवकाश न देकर वह काश्मीरी नौजवान कहने लगा--

"और आइए साहब, अब आपका परिचय काली कब्र वाले अब्दुल उम्र के साथ करवाया जाए।"

मैंने कहा--"धन्यवाद" और सुनने को तैयार होकर बैठ गया।

उस नौजवान ने कहा--"इस तरह नहीं साहब ! उम्र का परिचय पाने से पहले एक काम करना होगा।"

मैंने कहा--"वह क्या ?"

उसने कहा--"देखिए, साहब, ज़रा और आगे बढ़ कर इस जगह तक आ जाइए। हाँ. . . .इस तरह ! बहुत ठीक। अच्छा, अब वह काली कब्र आपके ठीक नीचे है न ?"

मैंने कहा--"हाँ, बिलकुल ठीक नीचे है !"

काश्मीरी नौजवान ने कहना शुरू किया--"करीब २०० साल हुए, गुरेज़ घाटी का गूजर सरदार अब्दुल उम्र बागी हो गया। काश्मीर के महाराजा ने उसे समझाने की कितनी ही कोशिशें कीं, मगर से सब बेकार हुईं। उसने श्रीनगर के सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाने के लिए बड़े-बड़े लालच दिए, मगर एक भी सरदार बगावत करने को तैयार न हुआ।

"इस पर एक दिन अब्दुल उम्र ने महाराजा के पास यह पैगाम भेजा कि अगर उसके पुराने कसूर माफ कर दिए जाएँ तो वह फिर से महाराजा का आज्ञापालक गुलाम बन जाने को तैयार है। महाराज बहुत ही शरीफ़ थे।

उन्होंने अब्दुल उम्र को माफ़ कर दिया। तब न जाने कितने तोहफ़े लेकर अब्दुल उम्र श्रीनगर आया और महाराज ने भाई के समान उसका स्वागत किया। करीब एक सप्ताह श्रीनगर मे रहकर जब वह गुरेज़ की ओर लौटने लगा, तो महाराज को गुरेज़ आने का निमन्त्रण देता गया। महाराज ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।"

सहसा काश्मीरी नौजवान ने अनुभव किया कि मै उसकी कहानी मे पूरी दिलचस्पी नहीं ले रहा हूँ। वह यह भी समझ गया कि मेरा ध्यान अभी तक नीली कब्र की ओर है, जहाँ ५०० साल पहले एक बहादुर विजेता इस उम्मीद से लेटा था कि कयामत के दिन कब्र मे उठ कर वह अपनी विजय की हुई नगरी को जी भर कर देखेगा। नौजवान ने अपनी आवाज़ मे नई तर्ज लाकर कहा—"घबराइए नही साहब, अब्दुल उम्र की कहानी बादशाह हसन का कहानी मे भी अधिक दिलचस्प है। किस्सा कोताह. बात यह हुई कि शरीफ़ महाराजा जब गुरेज़ की घाटी मे मेहमान बन कर पहुँचा, तो बेईमान अब्दुल उम्र ने आसानी से उसे कैद कर लिया।

"इधर श्रीनगर के लोगो को इस बात का स्वप्न मे भी ख्याल न था और यहा सब लोग बेफिक्र बैठे थे। महाराज को कैदकर अब्दुल उम्र ने अचानक श्रीनगर पर हमला कर दिया। वह इस शहर से पहले ही जला हुआ था। शहर वालों ने मिलकर उसका जबरदस्त मुकाबला किया। जब सीधी लड़ाई मे अब्दुल उम्र कामयाब न हुआ, तो उसने एक बहुत कमीनी हरकत की। आज की तरह उस जमाने मे भी श्रीनगर के अधिकांश मकान लकड़ी के ही बने हुए थे। उस बदमाश ने शहर को आग लगा दी। बदकिस्मती से उस दिन तेज हवा चल रही थी, इससे वह आग बड़ी तेजी से चारों तरफ़ फैल गई। मीलों तक आग ही आग दिखाई देने लगी!

"उधर उस बदमाश अब्दुल उम्र पर जैसे पागलपन का एक जनून सवार हो गया और इस जलते हुए बहिश्त का जी भर नज़ारा देखने के लिए वह भी एक तेज घोड़े पर सवार होकर इसी पहाड़ पर आया। उसके साथी उससे कुछ पीछे छूट गए। इसी नीली कब्र के पास शहर के

कुछ सरदार जमा थे और यह सलाह कर रहे थे कि अब क्या किया जाए। अचानक अपने दुश्मन को इसी जगह पाकर उन्हें समझ आ गया कि खुदा ने उनका शिकार खुद उन्हीं के पास भेज दिया है।

"ठीक इसी जगह, जिस जगह आप खड़े हैं, अब्दुल उम्र के घोड़े को पकड़ कर उन सरदारों ने उस कातिल को पहाड़ से नीचे धकेल दिया। यहाँ से ५० फीट नीचे, जहाँ आज उस बदमाश की कब्र है, उस जमाने में एक नोकीली चट्टान थी। इस चट्टान से टकरा कर उम्र का सिर चकनाचूर हो गया।

"कितने ही दिनों तक अब्दुल उम्र की लाश यहाँ ही पड़ी सड़ती रही और श्रीनगर के लोग उसकी लाश पर थूकने के लिए यहाँ आते रहे। उसके बाद एक तरफ़ तो महाराज की देख-रेख में श्रीनगर को नए सिरे से बनाने का काम शुरू हो गया और दूसरी तरफ़ इसी जगह, इसी काली कब्र के नीचे, उस हत्यारे को इस इरादे से दफना दिया गया कि कयामत के दिन जब वह कब्र से उठेगा, तो एकाएक उसकी निगाह श्रीनगर के स्वर्ग से बढ़कर सुन्दर और जगमगाते शहर पर पड़ेगी। वह देखेगा कि अपनी जान में उसने जिस शहर को जलाकर खाक़ कर दिया था, वह अब कितना शानदार शहर बन गया है। यह देख कर उसे जो जलन पैदा होगी, उससे श्रीनगर को जलाने का बदला चुक जाएगा!"

मैंने उस काली कब्र को अब जरा ध्यान से देखा तो वह मुझे पहले की अपेक्षा भी अधिक काली जान पड़ी।

न जाने मैं कब तक उसी जगह निश्चल भाव से बैठा रहा और कभी साथ की नीली कब्र की ओर और कभी नीचे वाली काली कब्र की ओर देखता रहा, जहाँ क्रमशः ५०० और २०० सालों से एक विजेता और एक डाकू के पिंजर कितनी भिन्न भावनाओं से कयामत के दिन का इन्तज़ार कर रहे हैं, ताकि उस दिन उनकी पहली निगाह श्रीनगर के शानदार नगर पर पड़े!

धीरे-धीरे सूरज डूब गया और सारा श्रीनगर, एक छोर से दूसरे छोर तक, बिजली के प्रकाश में सचमुच जगमगा उठा। मेरे पथप्रदर्शक ने मेरा ध्यान

भग किया और उसने कहा कि अंधेरा होने से पहले हमें ऊपर की पक्की पगडंडी तक अवश्य पहुंच जाना चाहिए, क्योंकि कोई भलामानस भूलकर भी रात को इधर नहीं आता ।
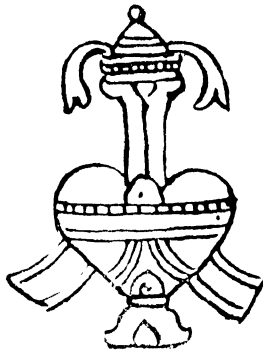
एक और हिन्दुस्तानी का जन्म हुआ !

पूरे ३१ दिनों तक लगातार कुम्भीपाक नरक की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करते रहने के बाद आनन्दी अपने तीनों छोटे-छोटे बच्चों के साथ हिन्दोस्तान जाने वाली एक गाड़ी मे सवार हो गई। उसका पति अपनी विधवा बहन और उसके परिवार को लाने के लिए हिन्द के फ़ौजियों के साथ ५० मील दूर के एक और कस्बे मे चला गया था। ७८ घंटों मे इस रेलगाड़ी ने, जिसमे पाँच हजार द्विपदों का एक पूरा कस्बा सवार था, जिसकी छते, फुटबोर्ड और सामान रखने के फट्टे उन अभागे लोगों से खचाखच भरे थे, जिन्हे तब तक मालूम नहीं था कि वे बहुत शीघ्र 'शरणार्थी' नाम की एक नई नीची जात मे शामिल कर लिए जाने वाले है, सिर्फ ६८ मील का सफर तै किया और आखिर वाघा तक आ पहुँची।

यों देखने मे कुछ भी नहीं बदला। वैसे ही कटे हुए खेत, वही शीशम के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और वैसा ही स्वच्छ आकाश। परन्तु वाघा पहुँचते ही एक दूसरे के साथ सटा कर पैक किए हुए इन हतप्राय ५,००० हिन्दियों मे जैसे उत्साह का एक तूफ़ान सा उठ खड़ा हुआ। सारी गाड़ी गगनभेदी नारो से गुंज उठी--"आजाद हिन्दोस्तान की जय !", "जय हिन्द !"

तीनों छोटे-छोटे बच्चों से चिपट कर बैठी हुई मूर्च्छितप्राय आनन्दी "जय हिन्द !" का यह उत्साह भरा नारा सुन कर सहसा चेतन होकर बैठ गई। पिछले दिनों के असीम दुख, सम्पत्ति और जन्मभूमि के छूट जाने का शोक, अन्धकारभरे भविष्य की चिन्ता, ७८ घंटों का असह्य कष्ट, तीन छोटे-छोटे बच्चों की चिल्लाहटों, फरमाइशों और लड़ाइयों की सरपंची का भारी

बोझ और सबसे बढ़कर अपने भीतर विद्यमान शिशु की वेदना--इन सब को भूल कर आनन्दी भी मुक्त कंठ से चिल्ला उठी--"जय हिन्द !"

"भारत माता की जय !"

"आज़ाद हिन्दोस्तान की जय !"

"महात्मा गान्धी की जय !"

पाँच हज़ार अत्यन्त दुखी नर-नारियों के दुख में सहसा जबरदस्त प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई। पिछले दिनों के कष्टों का भारी बोझ जैसे एकाएक उन्होंने दूर फेंक दिया। नारों का प्रबल उच्चारण प्रबलतर बनता गया। रेल के ड्राइवर, गार्ड, खलासी सब इस उत्साह-प्रदर्शन में शामिल हो गए। हाँ, अब उन्हें किस बात की चिन्ता है। माँ ने अपना आंचल सहसा खिसका कर छोटा कर लिया था और बिना अपराध वे माँ की गोद से पृथक् कर दिए गए थे, इससे उनके कष्टों का पारावार नहीं रहा था। अब वे पुनः अपनी माँ की गोद में वापस आ गए हैं। उनकी माँ, जो सुजला, सुफला और शस्य-श्यामला है, जो सुहासिनी, सुखदा और वरदा है, जो आज सदियों के बाद सचमुच रिपुदलों का वारण कर चुकी है। अब उन्हें किस बात की चिन्ता है। भूख, प्यास, भीड़, गरमी का कष्ट यह सब भूलकर वह बड़ी भीड़ ऊंचे, अधिक ऊँचे और उससे भी अधिक ऊँचे स्वर में भारत माँ का जय-जयनाद करती चली गई।

और आनन्दी के तीनों छोटे-छोटे बच्चे भी सब कष्ट भूल कर उसाह के इस तूफान में खुशी के साथ बह चले। अरुण कुछ नहीं समझता, अभी दो साल का मासूम बच्चा है न? ६ साल की विम्मी ने ४ साल की यशोदा का हाथ पकड़ कर कहा--"अरी तेरे कण्ठ में आवाज़ नहीं है क्या? ज़ोर से क्यों नहीं पुकारती--भारत माता की जय !" और यशोदा अरुण का हाथ पकड़ कर मुक्त कण्ठ से उन उद्दाम चिल्लाहटों में सहयोग देने लगी।

बच्चों को खुश देख कर आनन्दी की आँखों में आँसू भर आए। नारे लगाते-लगाते अपना माथा झुकाकर उसने अपने आराध्य देव को नमस्कार किया। भीतर-ही-भीतर उसका कृतज्ञ हृदय पुकार उठा--"हे मधुसूदन,

जिस तरह तुमने द्रौपदी की लाज रक्खी थी, उसी तरह आज तुमने मुझ अभागिन को भी सपरिवार उबार लिया !"

इधर नारे लगाते-लगाते बिम्मी को वे सब बाते याद आ रही थीं जो उनकी माँ पिछले कितने ही दिनों से उन्हे कहती आ रही है।

सिर्फ ३१ दिनों की ही तो बात है। विलासपुर का आस्मान भादों के काले बादलों से भर उठा था। बहुत दिनों की गरमी और घर की कैद से आनन्दी के बच्चे तंग आ चुके थे। आस्मान मे बादल देख कर बच्चे घर की छत पर जा पहुँचे और खुशी से भर कर खेलने लगे। सहसा एक भयावनी आवाज बहुत दूर से सुनाई दी। आनन्दी के बच्चों ने वैसा डरावना घोष पहले कभी नहीं सुना था, इससे उन्होंने उसे बादल की गरज ही समझा। परन्तु बहुत शीघ्र यह स्पष्ट हो गया कि वह महाघोष हजारों क्रूर दानवों का सम्मिलित युद्ध-घोष है। सबसे पहले आनन्दी इस बात को समझी और शीघ्रता से उसने अपने बच्चों को एक कमरे मे बन्द कर लिया। विलासपुर मे जगह-जगह आग लगाई जा रही थी, लूट-मार हो रही थी और यह सब किया जा रहा था "ईश्वर महान् है !" (अल्लाहो अकबर !) की ऊँची चिल्लाहटों के साथ-साथ।

आनन्दी के बच्चों को उन बीभत्सताओं से अधिक परिचय नहीं है। उन्हे तो इतना ही मालूम है कि घण्टों तक एक अन्धकारपूर्ण कोने मे बन्द रहने के बाद उन्हें पोलीस की देख-रेख मे एक धर्मशाला में ले जाया गया था, जहाँ एक छोटे से कमरे मे और भी कितने ही बच्चों और स्त्रियों के साथ वे पूरे ३१ दिनों तक बन्द रहे थे। न उन्हें दूध मिला, और न पूरा भोजन ही। जब वे भूख से, प्यास से अथवा भीड़ की दिक्कत से रोते थे तो आनन्दी सिर्फ एक बात कह कर उन्हे दिलासा दिया करती थी—"बेटा, थोड़े दिन और सब्र करो। हमें हिन्दोस्तान भेजा जा रहा है। हिन्दोस्तान, जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहती हैं; हिन्दोस्तान, जहाँ हमारे करोड़ों भाई-बहन हमारा इन्तजार कर रहे हैं; हिन्दोस्तान, जहाँ हमारा राष्ट्रपिता रहता है !"

थके शरीरों के गले थकने मे बहुत देर नहीं लगी। वाघा से १५ मील दूर अमृतसर की सीमा मे पहुँचने मे गाड़ी को ४ घंटे लग गए और पूरे ४ घण्टों के बाद जब सिगनल न मिलने के कारण गाड़ी स्टेशन से आध मील दूर ही अनिश्चित समय के लिए रोक दी गई, तो किसी भी यात्री मे यह शक्ति बाकी नहीं बची थी कि वह मुक्त कण्ठ से "जय हिन्द" पुकार सकता।

पाँच-सात मिनट तक गाड़ी का एंजिन चीखा चिल्लाया और उसके बाद आशा का कोई चिह्न न पाकर निर्जीव-सा पड़ रहा। यात्री बैठे-बैठे तंग आ गए थे। अब तो वे आज़ाद हिन्द की सीमा मे थे। इससे वे नीचे उतरने लगे। बहुत शीघ्र उन्होंने पाया कि जैसे वातावरण की मनहूसियत हिन्दोस्तान में पहुँच कर भी दूर नहीं हुई। चारों ओर बदबू फैली हुई थी, जैसे पुरानी लाशे सड़ रही हों, हवा के झोकों के साथ यह बदबू कभी-कभी बहुत बढ़ जाती थी। आसपास जले हुए मकान थे और इन अर्धदग्ध मकानों के निकट जो नर-नारी दिखाई दे जाते थे, उनके चेहरे पर प्रसन्नता तो एक ओर रही, जीवन तक भी दिखाई नहीं देता था।

आनन्दी थकावट से चूर हो गई थी। फिर भी वह बच्चों को छोड़ कर नीचे नहीं उतरी।

घण्टे भर की प्रतीक्षा के बाद जब गाड़ी सचमुच अमृतसर स्टेशन पर पहुँची, तो वहाँ खाने-पीने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। स्टेशन पर पानी के कुछ नल अवश्य थे, परन्तु उनसे पानी ले आ सकना आसान नहीं था। करीब ५ नलों से ५ हजार व्यक्ति पानी पीना चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि घण्टों की प्रतीक्षा के बाद बेचारी आनन्दी एक नल से लोटा भर पानी ला सकी।

अमृतसर से अम्बाला सिर्फ १५५ मील है। एक साधारण पैसेंजर गाड़ी ७ घण्टों मे अमृतसर से अम्बाला पहुँच जाती है। परन्तु आनन्दी जिस 'स्पेशल ट्रेन' में सवार हुई थी, वह अमृतसर से चलकर पूरे ७ दिनों के बाद अम्बाला पहुँची। सात दिन यानी १६८ घण्टे। और इस स्पेशल ट्रेन मे ५,००० हिन्दी अपनी सम्पूर्ण बची-खुची सम्पत्ति के साथ सवार थे।

१६८ घण्टे की इस रौरव यात्रा ने आनन्दी के शरीर को चूर-चूर कर दिया। रह-रह कर उसे वह दुर्भाग्यपूर्ण घड़ी याद आने लगी, जब उसने अपने पति को ननद का परिवार बचाने के लिए, एक तरह से जबरदस्ती रवाना किया था। उसे विश्वास था कि जब वह हिन्द जाने वाली गाड़ी पर सवार हो गई है, तो एक रात के सफ़र के बाद ही वह अम्बाला जा पहुँचेगी। उसे यह तो मालूम नहीं था कि यह रेलगाड़ी भी बैलगाड़ी की चाल से चलेगी।

अम्बाला छावनी इस रेलगाड़ी का टरमिनस था, सो यह रेलगाड़ी स्टेशन से कुछ दूर एक साइडिंग में खड़ी कर दी गई। सब मुसाफिर अपने बोरिया-बिस्तर ले कर नीचे उतरने लगे। जहाँ इस गाड़ी के यात्री उतारे जा रहे थे, वहाँ न छत थी, न कोई प्लेटफार्म ही था और किसी अन्य सुख-साधन की व्यवस्था थी। छोटी-छोटी बिरल झाड़ियों के आस-पास, जहाँ जिसे जगह मिली, उसने वहीं डेरा जमा लिया। आनन्दी को विश्वास था कि उसका पति दूसरी गाड़ी से अम्बाला के लिए चल दिया होगा। इससे वह यशोदा और अरुण को साथ लेकर चली और स्टेशन के निकट ही डेरा लगाने का उसने निश्चय किया। अपना एक बक्स भी वह साथ उठा कर लेती गई। वहाँ न तो कुली थे और अगर वे होते भी, तो भी आनन्दी में कुली करने का सामर्थ्य नहीं था। आनन्दी ने पाया कि पहले आई रेल गाड़ियों के हज़ारों मुसाफिरों से स्टेशन के सभी प्लेटफार्म, पोर्च और बरामदे आदि जैसे भरे पड़े हैं और कहीं भी तिल रखने तक की जगह नहीं है।

लाचार होकर, पोर्च से बाहर की सड़क के किनारे खुली धूप में ही आनन्दी ने अपना ट्रंक रख दिया और निढाल होकर उसके ऊपर बैठ गई। दोनों छोटे बच्चे सहम कर अपनी माँ की गोद से जा चिपके। जैसे किसी अज्ञात विभीषिका ने उन अनजान बच्चों में वह दहशत पैदा कर दी कि वे भूख, प्यास या गरमी के कारण रोने तक का साहस भी नहीं कर सके।

न जाने कब तक आनन्दी इसी तरह पड़ी रहती, अगर उसे अपनी बड़ी बेटी विम्मी के बाकी सामान के साथ एकाकी होने का अहसास न होता।

वह एकाएक उठ खड़ी हुई ४ साल की यशोदा की गोद मे दो साल के अरुण को देकर यह कहती हुई कि "मै विम्मी को लेकर अभी आई" शीघ्रता मे चल दी।

सितम्बर के अन्तिम सप्ताह का यह गरम दिन आनन्दी और उसके मासूम बच्चों के लिए एक महा दुस्वप्न के समान बीता। अपना संक्षिप्त-सा सामान लाने के लिए आनन्दी को ४ चक्कर लगाने पड़े और यह सब करते-कराते साँझ हो गई। मूंगफली के कुछ दानों के अतिरिक्त उसके बच्चों को दिन भर मे और कोई आहार नहीं मिला।

तीन छोटे-छोटे बच्चों के साथ अपने जीवन मे पहली बार आनन्दी ने खुले आस्मान के नीचे सितम्बर के अन्त की वह ओसभरी रात काटी। सारी रात वह बच्चों के तन ढकती रही और उसके कान स्टेशन पर नई आने वाली रेलगाड़ी की प्रतीक्षा मे लगे रहे। सारी रात वह सो नहीं सकी। सौ तरह की चिन्ताएँ उसके मानस पटल पर अधिकार किए हुए थीं और उन सब के बीच उसे एक ही आशा की किरण दिखाई देती थी कि भगवान करे, अगली रेलगाड़ी मे उसका पति अम्बाला पहुँच जाए। पर उस रात कोई रेलगाड़ी नहीं आई।

दूसरे दिन आनन्दी ने साहस बटोर कर जिस किसी तरह खाने-पीने का कुछ सामान संजोया और इधर-उधर से कुछ ईधन जमा कर हंडिया मे खिचड़ी चढ़ा दी। अब उसे सब से बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई एक चारपाई की। इसलिए नहीं कि वह या उसके बच्चे उस पर सो सके। परन्तु इसलिए कि चारपाई को खड़ा कर उस पर दरी बिछा कर वह और उसके बच्चे दिन भर की तेज़ धूप से अपना बचाव कर सके। छतों के नीचे की तो बात ही क्या, वृक्षों और दीवारों की छाया पर भी सैकड़ों-हज़ारों अभागे शरणार्थियों का एकाधिकार स्थापित हो चुका था और वे बड़ी सतर्कता के साथ अपने उस अधिकार की रक्षा कर रहे थे।

दो घंटों की मेहनत के बाद बड़ी आरज़ू और मिन्नत से आनन्दी १५ रुपयों में बाँस की एक पुरानी चारपाई खरीद लेने में सफल हुई। आनन्दी

ने चारपाई क्या खरीदी, जैसे एक मकान मोल ले लिया। सड़क के किनारे करीब १० फुट लम्बी और ८ फुट चौड़ी जगह पर उसने कब्जा जमा लिया। इस जगह के एक ओर सड़क थी और बाकी तीनों ओर आनन्दी के समान अभागे नर-नारियों द्वारा अधिकृत छोटे-बड़े पड़ाव फैले हुए थे। स्त्रियां, जहां-जहां सम्भव था, खाना बनाने मे संलग्न थीं, पुरुष हाथ-पर-हाथ धरे बैठे थे और जो बच्चे एकदम सहमे हुए नहीं थे, जमीन की मिट्टी पर लकीरे बना कर खेल रहे थे। धूल और धूएँ के साथ एक ही और चीज़ थी जो हवा की तरह वहाँ सम्पूर्ण वायुमण्डल मे व्याप्त थी, और वह थी गहरी वेदना, जिसका परिस्फोट बड़ी उम्र के कितने ही स्त्री और पुरुषों के उच्च रुदन या सिसकियों द्वारा हो रहा था।

दम घोटने वाले इस वातावरण मे आनन्दी और उसके बच्चों ने तीन दिन और तीन राते निकालीं। इन तीन दिनों में कम-से-कम ६ रेल गाड़ियां अमृतसर की ओर से अम्बाला आई। अभागी आनन्दी ने उन सभी रेलगाड़ियों को एक सिरे से दूसरे सिरे तक छान मारा, पर उसका पति नही आया। चौथे दिन की दोपहर को एक रेलगाड़ी आई। इस पर भी उसका पति तो नहीं आया, पर एक जानकार आदमी से उसे अपने पति का समाचार जरूर मिला। जानकार ने बताया कि इस गाड़ी पर आनन्दी के पति को अपनी विधवा बहन और उसके ५ बच्चों के लिए जगह नहीं मिल सकी, इस कारण वह अगली गाड़ी से अम्बाला आ रहा है। चिन्ता और निराशा की महारात्रि मे आनन्दी को जैसे आशा की एक किरण दिखाई दी और बाहर आकर अपने बच्चों को उसने यह शुभ समाचार सुनाया।

पर उसी साँझ वह बात शुरू हो गई, जिसकी कल्पना मात्र से आनन्दी के रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसे प्रसव-वेदना शुरू हो गई। चारपाई की ओट मे बिछे बिस्तरे पर आनन्दी चुपचाप लेट गई। उसका जी करता था कि वह चीख-चीख कर रोए, पर बिम्मी, यशोदा और अरुण की मौजूदगी

मे दिल खोलकर रोना तो एक ओर रहा, वह एक आँसू भी किस तरह बहा सकती थी !

क्रमशः रात का अंधेरा चारों ओर व्याप्त हो गया। मातम के उस शिविर मे प्रकाश के साधन किसी के पास नहीं थे। केवल रेलवे स्टेशन की बिजली की बत्तियों का प्रकाश इस करुण चित्र को और भी अधिक दयनीय रूप मे पेश कर रहा था। इस अन्धकार मे एक विषादभरा कोलाहल शिव ताण्डव नृत्य की पृष्ठभूमि का-सा वातावरण उत्पन्न कर रहा था। अधिकांश बच्चे सो गए थे, पर जैसे आसन्न महासंकट की सम्भावना से आनन्दी के तीनों बच्चे उसे घेर कर बैठे हुए थे। आनन्दी की पीड़ा बहुत बढ़ गई थी और रह-रह कर वह कराह उठती थी। माँ की यह कराह सुनकर तीनों बच्चों की आत्मा तक काँप जाती थी, पर किसी अनिर्वचनीय महा-शक्ति ने उन्हे यह ज्ञान आप-से-आप दे दिया था कि वे चुपचाप यह सब देखते रहे, रोये नहीं, कल्पे नहीं और न ही चीखे-चिल्लाएँ, इसलिए कि उन्हे रोता देखकर उनकी माँ को और भी अधिक कष्ट होगा; इसलिए भी कि नर-नारी से भरे उस बीयाबान में उनकी करुण पुकार सुनने वाला कोई भी नहीं है !

रात बढ़ने के साथ-साथ आनन्दी का कष्ट भी बढ़ता चला गया। चारों ओर के वातावरण की मनहूसियत जैसे और भी गहरी होती चली गई। १२ बजे स्टेशन की सब बत्तियाँ बुझा दी गई, क्योंकि सूचना के अनुसार अगली गाड़ी आने का समय ५ बजे प्रातःकाल था। इधर बत्तियाँ बुझीं और उधर दूर पर से, गीदड़ों की हूँ-आँ हू-आँ ध्वनि सुनाई देने लगी। सप्ताहों से भरपेट भोजन न मिलने के कारण अम्बाला भर के कुत्ते जैसे बौखला से उठे थे। गीदड़ों की इस 'हू-आँ ! हू-आँ !' का जवाब वे सब एक साथ रोकर देने लगे। शिविर के नर-नारियों का रोदन कुत्तों की इस अशुभ चीत्कार के भीतर छिप-सा गया।

आनन्दी की कराह अब और भी अधिक करुण, और भी अधिक ऊंची हो गई थी। तीनों बच्चे न जाने कब आप-से-आप आनन्दी से चिमट कर

सो गए थे। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि कष्ट से छटपटाती और रोती-कलपती आनन्दी के आस-पास चारों ओर सैकड़ों नर-नारी सोये या लेटे थे और उनमे से एक का भी ध्यान उसकी ओर नहीं जा रहा था। महीनों से दिन-रात रोदन और कराहे सुन-सुन कर जैसे उन सैकड़ों-हज़ारों नर-नारियों के लिए वह सब रोना-कलपना एक इतनी सहज साधारण बात बन गई थी कि वे उसकी नितान्त उपेक्षा कर सकते थे। जैसे आनन्दी एक ऊसर बीयाबान मे बिल्कुल अकेली पड़ी छटपटा रही हो!

और एक क्षण आया, जब कि हिन्दोस्तान भर की वह लाज केवल आस्मान के तारे ही देख पाए!

:o: :o: :o:

आनन्दी का पति जब अपनी बहन और उसके बच्चों के साथ स्टेशन से बाहर निकला, तब भी प्रातःकाल का प्रकाश फैलने नहीं पाया था। केवल पूर्व दिशा मे आकाश मे हल्की अरुणिमा दिखाई देने लगी थी। स्टेशन की बत्तियाँ अब जला दी गई थी। सड़क की बत्तियों मे धुधले रूप मे प्रकाशित नर-नारियों की इस भीड़ की ओर आनन्दी के पति ने खोजती निगाह से देखा। समीप ही मे एक सद्योजात शिशु का रोदन उसके कानों मे पड़ा। वह शीघ्र ही उस ओर बढ़ चला। सड़क के एक लैम्प के प्रकाश मे उसने देखा कि उसकी जीवनसंगिनी आनन्दी खून मे लथपथ होकर निस्संज्ञ पड़ी हुई है और उसकी दोनों जंघाओं के बीच एक सद्योजात शिशु तड़प रहा है। कुछ ही दूरी पर उसके तीनों बच्चे एक-दूसरे से चिपक कर सोये हुए है। आनन्दी की ननद ने लपक कर इस शिशु को अपनी गोद मे उठा लिया और आनन्दी का पति अपने आँसुओं से चिरनिद्रा मे मग्न अपनी जीवन-संगिनी के मस्तक का अभिषेक करने लगा।

कामकाज

(१)

बाजार-भर में तहलका-सा मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्जन अपने एक नौजवान रिश्तेदार के सहारे अनारकली बाजार के बीचोबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाँह बंधी हुई थी, कपड़े मैले हो गए थे और मालूम होता था कि बहुत दिनों से वे हजामत नहीं बना पाए। इन सज्जन की आँखों में इतनी गहरी निराशा और असीम व्यथा का भाव स्पष्ट अंकित था कि देखनेवाले सहमकर रह जाते थे। उनके पीछे-पीछे चालीस-पचास व्यक्ति चुपचाप चले आ रहे थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए या आहत व्यक्तियों का पहला बैच आज लाहौर पहुँचा था, और उन सब में सम्भवतः यही एक ऐसे सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे। उन्हें देखने कितने ही लोग उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दूकान में खड़े होकर नये आनेवाले कपड़ों के नमूनों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूर से आते हुए उस मातमी-से मजमे पर पड़ी; मगर उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दो-एक मिनट में वह सज्जन लाला कस्तूरीमल की दूकान के सामने आ पहुँचे और उन्होंने अपने साथ के नौजवान से कहा--"बेटा, मुझे दो-एक कपड़े न खरीद दोगे?"

"मैं भी आपसे यही प्रार्थना करने वाला था।"--कह कर वह नवयुवक उन्हें लाला कस्तूरीमल की दूकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दूकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दूकान पर सेल्समैन की कमी नहीं है; मगर इन सज्जन की मैली-कुचैली हो रही आकृति में भी कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए पूछा––"कहिए, क्या हुक्म है ?"

उन सज्जन ने धीरे से कहा––"कुछ धोतियाँ दिखाइएगा ?"

उसी वक्त एक आदमी को धोतियाँ लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इल्हाम-सा हो गया कि यह सज्जन कहाँ से आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा––"आप क्वेटा से आ रहे हैं ?"

"जी हाँ।"

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। वे पिछले तीन दिनों में कम-से-कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमें से एक का भी जवाब उन्हें नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार-सहित क्वेटा में ही रहते थे और उनके सम्बन्ध में उन्हें अब तक कोई ख़बर नहीं मिली थी। धोतियों के एक नए आए हुए बण्डल का तागा कैंची से काटते हुए उन्होंने ज़रा व्यग्र भाव से पूछा––"पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंण्ट के इंजीनियर श्री मधुसूदन को आप जानते हैं ?"

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा––"जी हाँ।"

"उनके घरवालों को भी।"

"जी हाँ। ख़ूब अच्छी तरह।"

लाला कस्तूरीमल ने नीली किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोलकर दिखाते हुए पूछा––"यह नागपुर की धोती है।.... मि० मधुसूदन तो शायद उन दिनों दौरे पर थे ?"

"जी नहीं। २९ मई की रात को उन्हें दौरे के लिए रवाना होना था; मगर वे गए नहीं। दौरा उन्होंने अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया था।"

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा––"यह धोती धुलने के बाद बहुत हलकी हो जाती है––ठीक गरमियों

के लायक। यह भी नागपुर की है।....अच्छा, तो वे दौरे पर नहीं गए?"

"जी, नहीं जा सके।"

"मेरा कोई तार उन्हें मिला था?"

"मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। श्री मधुसूदन अब इस दुनिया में नहीं रहे।"

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती-भर भी विश्वास नहीं हुआ। धोतियों के ढेर में से एक और जोड़ा निकालते हुए उन्होंने कहा--"आप किन मधुसूदन की बात कर रहे हैं?"

"उन्हीं मधुसूदन की, जिनकी पत्नी का नाम ऊर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिणी किनारे पर सरकारी हाई स्कूल के खेलने के मैदान के निकट थी।"

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ़-साफ़ दीख पड़ी। डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनके के आसरे को भी नहीं छोड़ना चाहता, उसी तरह लाला कस्तूरीमल ने अपने अविश्वास को जबरदस्ती जमाये रखने की चेष्टा करते हुए कहा--"भूकम्प के बाद आप उनके यहां गए थे?"

"नहीं जी।"

"फिर आपको कैसे मालूम कि वे नहीं बच पाए?"

"उनके छोटे भाई साहब की जबानी मालूम हुआ! आप बिना किनारे की भी कुछ धोतियां दिखाइयेगा?"

"मदरासी धोतियाँ। कर्नाटक मिल। पाँच सात प्लेन डिजाइन फेंको!" लालाजी ने अपने आदमी को आवाज़ दी और उसके बाद कहा--"उनके भाई साहब से? क्या उन्होंने मि० मधुसूदन का अन्तिम संस्कार किया था?"

"जी नहीं। उनकी देह मिली ही नहीं। शायद कोठी की खुदाई करने पर कहीं कुछ पता चले।"

दणिक्ष के छज्जे पर से पाँच-सात धोतियों का एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आकर गिरा। इस उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से गाहक के सामने जोड़ा खोलकर दिखाने लगे––"यह कर्नाटक का माल है। कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुँचाया है।" लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गम्भीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा––"तो फिर क्या यह सम्भव नहीं कि घर में किसी को भी सूचना दिए बिना ही वे दौरे पर चले गए हों?"

"नहीं जी। ऐसा नहीं हुआ। वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे।"

"ये धोतियाँ आप अवश्य पसन्द करेंगे। हाँ, ऊर्मिला का क्या हाल है?"

"वे अस्पताल मे है?"

"अस्पताल मे!" लाला कस्तूरीमल की सम्पूर्ण देह एक बारगी काँप उठी और क्षण-भर के लिए उनके दोनों हाथ धोतियों के ढेर पर से उठ गए––"उनकी हालत कैसी है?"

"चोट तो उन्हें उतनी अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चे के देहान्त का सदमा पहुँचा है। आपको अवश्य ही स्वयं क्वेटा जाकर उन्हे लाने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस जोड़े की कीमत क्या है?"

"चार रुपया छः आना इसकी खरीद है। मै आपसे ज्यादा चार्ज नहीं करूँगा। कुछ और भी नमूने दिखाऊँ क्या?"

"आपकी मेहरबानी। बनी-बनाई कमीजें भी तो आपके यहाँ होंगी?"

"आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न?"

"जी नहीं? मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिए।"

"हम खुद जहाँ तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते है।.... आपने खुद ऊर्मिला को अस्पताल में देखा था?"

"जी नहीं। यह भी श्री मधुसूदन के भाई साहब ने ही बताया था। मै खुद चोट खा गया था, कहीं आ-जा नहीं सका।"

"आप रेशमी कमीजें चाहते हैं या सूती ? दोनों ही देख लीजिए। रामलाल, ३८ नम्बर की कमीजें लाना !" और उस एक ही साँस के उत्तर-भाग को अत्यधिक करुण और एकदम ठण्डा बनाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा--"तो क्या काशी भी इस दुनिया में नहीं रहा ?"

"मुझे इस बात का हार्दिक दुख है कि ये दारुण समाचार मै आपको दे रहा हूँ।"

इस समय तक काउण्टर पर कमीज़ों का ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल डिब्बों मे से कमीजें दिखाते हुए बोले--"यह मुर्शिदाबादी रेशम की कमीज़ है, यह ढाके के रेशम की और यह काशी के रेशम की। मजबूती के लिहाज़ से यह काश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इत्सूका सूती कपड़ा सब को मात कर गया है। मिल ने हाल ही मे कीमतें भी बहुत गिरा दी हैं।" और तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास को ज़बरदस्ती जगाकर लाला कस्तूरीमल ने कहा--"मि० मधुसूदन के भाई साहब तो चमन गए हुए थे।"

"दो-एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुँचे थे। उस रात वे बरामदे में सोये थे, इसी से बच गए। इस कमीज़ की कीमत क्या है ?"

"सात रुपया छः आना। आप से मै सात ही लूँगा।"

"धन्यवाद। इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

इसी समय एक सम्भ्रान्त महिला उस दुकान में आई। लाला कस्तूरी-मल अपने एक सहकारी को उस सज्जन के पास छोड़ कर स्वयं उस महिला की ओर बढ़ गए। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी; परन्तु उनकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया था।

(२)

रावलपिंडी जेल का सबसे अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ़ मजे-मजे में ग्यारह का घंटा बजा रहा था। सरदियों का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हल्की-हल्की धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी।

इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज़ आई--"तार ले लो।"

ड्योढ़ी में कोई चौकीदार नहीं था। भीतर के सहन से यूसुफ़ ने तारवाले की आवाज़ सुनी; मगर उसने कोई परवाह नहीं की। मज़े-मज़े में उसने मुगरी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे वह फाटक की ओर बढ़ा। तारवाला बहुत अधीर हो रहा था; परन्तु यूसुफ़ का डील-डौल देखकर उसे हिम्मत न हुई कि वह उसपर अपना रौब डालने का प्रयत्न करे।

नज़दीक आकर यूसुफ़ ने पूछा--"किसका तार है?"

"यूसुफ़ जमादार का।"

अट्टहास करके यूसुफ़ हँस पड़ा। जेल भर मे और तो कोई यूसुफ़ है नहीं। बाकी रहा वह; सो उसका तार आ ही नहीं सकता। पिछले कई बरसों से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक भी नहीं आई, उसका तार कहाँ से आ सकता है? फिर उसे तार देगा ही कौन? सरहद के जिस अफ़रीदी प्रान्त में उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि में एक भी डाकखाना या तारघर नहीं है। जी-भर कर हँस लेने के बाद यूसुफ़ ने कहा--"कहीं ग़लती से कचहरी के यूसुफ़ का तार जेल के यूसुफ़ के पास तो नहीं ले आए?"

मगर तार सचमुच उसी का था और बहुत शीघ्र उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौत के बाद कोई और व्यक्ति ठीक तौर से उन्हें दफ़ना सकेगा, इस बारे में उन्हें शक़ था, इसी से उन्होंने यूसुफ़ को बुलाने के लिए तार भिजवाया है।

यूसुफ़ को इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए पन्द्रह वरस बीत चुके हैं। इन पन्द्रह बरसों में वह एक बार भी अपने देश को नहीं गया। कभी किसी बात के लिए एक दिन की भी छुट्टी उसने नहीं ली। युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में उस अशासित प्रान्त में अपने अनेक साथियों के साथ यूसुफ़ ने बीसों साहसिक काम किए हैं--डाके डाले हैं, चोरियाँ की हैं और छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ़ का विवाह हो गया, तो उसके श्वसुर-पक्ष का यह सबसे बड़ा उलाहना बन

गया कि यूसुफ़ निठल्ला है--न वह खेती-बारी करता है, न वह किसी गिरोह का सरदार है और न सरकार ही से वह कुछ वज़ीफ़ा पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ और रावलपिंडी पहुँचकर जेल में पहरेदार के पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह बरसों में प्रतिमास वह कम-से-कम दस रुपए अपने श्वसुर साहब के पास भेजना रहा है; मगर न तो वह खुद कभी उनसे मिलने के लिए गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने श्वसुर का तार पाकर सहसा यूसुफ़ को अपनी मातृभूमि की स्मृति हो आई। वज़ीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ों पर चरती हुई भेड़ें और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वस्थ, हृष्टपुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ! उन्हीं सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होते हैं। उसी भूमि की मटियाली-सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और वहीं किशमिश, न्योजे और बादाम की बहार आती है। वहाँ आज़ादी है, वहाँ वीरता है और सबसे बढ़कर वहाँ पुरुषत्व है। हाँ, यूसुफ़ का बहिश्त वही तो है।

और इसके साथ-ही-साथ उसे अपने श्वसुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर भी उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौर से दफ़ना सकेगा? यूसुफ़ को जाना ही चाहिए। वह जाएगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष तरह की स्निग्धता का भाव यूसुफ़ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुनगुनाता हुआ वह जेलर साहब के दफ्तर की ओर बढ़ गया। यूसुफ़ के आने से पहले ही उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुस्कराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने कहा--"क्यों यूसुफ़, पन्द्रह साल का रिकार्ड तोड़ कर छुट्टी लेना चाहते हो?"

यूसुफ़ ने कोई जवाब न दिया।

जेलर साहब ने पूछा--"तुम्हारे श्वसुर की उम्र कितनी है?"

"छियत्तर साल।"

"अब भी तुम चाहते हो कि वहाँ पहुँचकर उसे बचाने की कोशिश करो?"

यूसुफ़ चुप रहा।

जेलर ने अब के बहुत ही गम्भीर बनकर कहा—"क़ानून के मुताबिक यहाँ छः जमादारों का हर वक्त मौजूद रहना लाज़मी है। आठ जमादारों में से दो पहले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत में मैं तुम्हें छुट्टी किस तरह दे सकता हूँ?"

यूसुफ़ ने कहा—"अलादीन की छुट्टी कल से मंज़ूर हो चुकी है; मगर वह गया नहीं। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक़ में बाद के लिए मुल्तवी करवा लेगा। उसे कोई ख़ास काम तो है नहीं।"

जेलर साहब ने कुछ चिढ़कर कहा—"तुम्हें कौन-सा ख़ास काम है? ससुर का दफ़नाना! यह भी कोई काम है!"

कठोरहृदय यूसुफ़ ने सिर झुका दिया—जैसे वह पराजित हो गया हो। मगर जेल के क्लर्क ने उसकी मदद की। वह बोला—"शायद कोई जायदाद-वायदाद का सवाल हो।"

यूसुफ़ खीज उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—"मैं किसी जायदाद के लालच से नहीं, बल्कि अपने ससुर की खिदमत के खयाल से ही वहाँ जाना चाहता हूँ।"

जेलर ने ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—"ससुर का भी कोई नाता होता है! एक आदमी की लड़की ले ली, इससे वह उम्र-भर के लिए रिश्तेदार हो गया!—यह भी कोई रिश्ता है?"

जेल का क्लर्क मुँह मोड़ कर अपनी हँसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लेक्चर अभी तक जारी था—"देखो यूसुफ़! हिन्दुस्तान भर में सिर्फ़ तुम्हारा ही यह रिकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन की छुट्टी कभी नहीं ली। एक ज़रा-सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रिकार्ड तोड़ डालना चाहते हो?"

दानवकाय यूसुफ़ से जब और कुछ न बन पड़ा, तो उसकी आँखों में आँसू भर आए।

क्लर्क को अब उस पर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा--"तो तुम ज़रूर छुट्टी लेना चाहते हो?"

यूसुफ़ ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

क्लर्क ने जेलर से कहा--"वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाक़ी है। क़ानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।"

जेलर ने एक बार अपने क्लर्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा; परन्तु सहसा उन्हें उसी समय किसी भूली बात का स्मरण हो आया। करीब दो महीने बाद पेशावर के जेल-इन्स्पेक्टर महोदय रावलपिण्डी में नियुक्त होकर आनेवाले थे। जेलर ने उन्हें भेंट में भेजने के लिए सेवों की एक पेटी का आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ़ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाए।

जेलर साहब ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा--"तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गाँव जाओगे न?"

"जी हाँ।"

"तो तुम्हें मैं दस दिनों की छुट्टी दे सकता हूँ। मगर आज से नहीं। दो दिन बाद से।"

यूसुफ़ ने नम्रता से कहा--"उनका तो मालूम नहीं, वे कब चल बसें। आज रात को रवाना होकर भी जल्दी-से-जल्दी मैं तीन दिन बाद ही वहाँ पहुँच सकता हूँ।"

जेलर ने कहा--"तुम्हारी छुट्टी मंजूर होने में दो दिन अवश्य लग जाएँगे।"

यूसुफ़ और क्लर्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर साहब की ओर देखा। उन दोनों के लिए यह बात अश्रुतपूर्व थी। क्लर्क ने कहा--"दरखास्त पर आप ही के दस्तख़त काफ़ी नहीं हैं क्या?"

अपनी कमीनगी पर मुस्कराहट का परदा डालते हुए जेलर ने कहा--"यार, तुम्हे मेरी सेवों की एक पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी और वह पेटी परसों से पहले यहाँ नहीं पहुँच सकती।"

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ़ आज ही रवाना हो जाने के लिए और अधिक आग्रह नहीं कर सका !

(३)

साइकल के पैडलों पर तेज़ी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं और आज शनिवार है। एक बजे के बाद बैंक से लेन-देन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पाँच सौ रुपयों के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर उसे अपने मालिक की एक रेलवे रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग़ से होकर जहाँ माल रोड की ओर घूमती है, वहाँ देसराज के मार्ग में सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पचीस आदमी जमा थे। देसराज की साइकल जब वहाँ पहुँची, तो दो-तीन आदमियों ने हाथ बढ़ाकर उस से कहा--"बाबूजी, ज़रा ठहरिए।"

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते एक आदमी को गश आ गया है। उसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम; मगर बेहोशी की दशा में भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण-से स्वर में वह बार-बार पुकार उठता है--'पानी ! पानी !'

मगर आस-पास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेले वाले ने देसराज से कहा--"बाबूजी, वह यहाँ से थोड़ी सी दूरी पर यूनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। आप यदि साइकल पर वहाँ जाकर एक लोटा पानी ला सकें, तो इस बेचारे की जान बच जाए।"

देसराज ने पूछा--"यहाँ यह कब से पड़ा है ?"

किसी ने बताया--"करीब पन्द्रह मिनट से।"

देसराज ने दूसरा सवाल किया--"इसे क्या बीमारी है ?"

एक मुसाफ़िर ने ज़रा झुँझलाकर कहा--"हम लोगों में से कोई

डाक्टर तो है नहीं। जो कुछ है, वह आपके सामने है।"

देसराज शायद इस बात पर खिज उठता। परन्तु उसी समय उसी ठेले वाले ने बड़ी नम्रता से कहा--"बाबू साहब, यहाँ इस आदमी का अपना सगा कोई भी नहीं। यदि दो-चार मिनटों में आप साइकल पर जाकर कहीं से इसे पानी ला दे सकते, तो उसके बाद मैं अपने ठेले पर लिटाकर इसे अस्पताल तक छोड़ आता। आप साहब हैं, आपको माँगने पर पानी मिल भी जाएगा; मगर हम ग़रीबों को इन बड़ी-बड़ी इमारतों मे कोई घुसने भी न देगा।"

देसराज के जी में सचमुच दया का संचार हो आया। वह खुद भी एक ग़रीब बाबू है--ऐसा गरीब बाबू, जिसे अपने जीवननिर्वाह में इन ठेले वाले और झल्लीवाले मज़दूरों से भी बढ़कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उससे दिन में बारह घण्टे और चार सप्ताहों में सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दूकान महीने में एक ही दिन बन्द होती है) कसकर काम लेता है, तब जाकर उसे तीस रुपया मासिक वेतन मिलता है। वह भी यदि ग़रीबों के दुख-दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नहीं समझेगा तो कौन समझेगा ? वह देख ही रहा था कि कालेज के विद्यार्थियों की साइकलें और अमीरों की कारें काफ़ी संख्या में उसी सड़क पर से होकर इधर-उधर निकल जाती ह, किसी को इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ी पर पड़ी। बारह बजकर पैंतालीस मिनट हो चुके हैं। पन्द्रह मिनटों के बाद बैंक में न तो रुपए ही जमा कराए जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलने में दो दिन की देर हो जाएगी, और वह स्वतन्त्र नहीं है !

हृदय की सम्पूर्ण भावुकता को कुचलकर देसराज साइकल पर सवार हो गया और कुछ गज़ आगे बढ़कर कहता गया--"बीस-पचीस मिनट में मैं वापस आता हूँ।"

बैंक से अपना काम समाप्त कर देसराज जब गोलबाग के नज़दीक

पहुँचा, तो उसने देखा कि वहाँ तमाशबीनों की भीड़ इतना अधिक बढ़ गई है कि सड़क पर राह मिलना भी कठिन है।

देसराज साइकल से उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा--"क्या बात है ?"

उसने बताया--"कुछ नहीं, कोई मुसाफ़िर राह चलते सड़क पर गिरकर मर गया है और पुलिस उसकी लाश लेने आई है।"

देसराज ने एक ठण्डी साँस ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार कर वह पुनः साइकल पर सवार हो गया। पाँच सौ रुपयों के पोमेड वैसलीन के पार्सल की अत्यधिक महत्वपूर्ण रेलवे रसीद अब उसकी जेब में पड़ी थी !

कबूतर

हाँ, मैंने नरक देखा है। वह भी थोड़े समय के लिए नहीं, पूरे २७ दिनों के लिए--चार सप्ताह से सिर्फ़ एक दिन कम। एक बियाबान चट्टानी प्रदेश में हम लोग शत्रु से अचानक घिर गए थे। मैं अपनी टुकड़ी का असिस्टेण्ट कमाण्डर था। शत्रु से मोरचा लेते-लेते हम लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे थे। बड़ी-बड़ी चट्टानों, टेढ़े-मेढ़े नालों और पहाड़ी खड्डों की बदौलत इस सुनसान इलाक़े में बड़े टैंकों को ले जाना सम्भव नहीं था। ऊपर हमारे हवाई-जहाज़ थे और नीचे ब्रेनगनें हाथ में लिए हमारे सिपाही। वह भी प्रायः पैदल। फिर भी हम लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे थे। पर एक दिन एक चट्टानी खन्दक में बैठकर गोलाबारी करते हुए हम ५-७ सैनिकों ने पाया कि आकाश एकाएक शत्रु के हवाई-जहाज़ों से छा गया है और यह भी कि अपनी खन्दक में हम लोग एक तरह से चूहेदानी के समान फँस गए हैं। उस दिन पासा अचानक किस तरह पलट गया, यह मुझे अभी तक मालूम नहीं; परन्तु यह एक सचाई है कि एकाएक इस तरह घिर जाने के बाद पूरे २७ दिनों तक हम लोग नरक का साक्षात् करते रहे।

हमारे आस-पास के इलाक़े पर शत्रु का अधिकार हो गया था। उस बीहड़ पहाड़ी इलाक़े में शत्रु बड़ी तेज़ी के साथ सड़कें बनाने लगा। आकाश में हर समय शत्रु के हवाई-जहाज़ चक्कर काटते दिखाई देते थे। आस-पास से शत्रु की फ़ौजों के मार्चिंग की आवाज़ें आया करती थीं। चट्टानें काटने वाली बारूद की ऊँची आवाज़ सुनते-सुनते हमारे कान बहरे हो चले थे। हमारे पास खाने-पीने का जो-कुछ थोड़ा-सा सामान था, वह

सब चुक गया था। फिर भी हमारा भाग्य कि शत्रु को हमारा कुछ भी पता नहीं चला था। सारा दिन हम लोग बिना कुछ खाए-पीए चुपचाप एक पहाड़ी खोह के भीतर पड़े रहते थे और रात के समय बारी-बारी से हममें से एक आदमी भयंकर खड्ड की गहराइयों में से उतरकर, शत्रु के हवाई-जहाज़ों के सर्चलाइट से बचते-बचते, तलहटी के चश्मे से सब के लिए पीने का पानी लाया करता था।

दसवे दिन की बात है। आधी रात का समय था। आज चश्मे से पानी लाने की मेरी बारी थी। दिन-भर सख्त गरमी रही थी। कई दिनों तक खोह के अंधेरे में बन्द रहने के बाद आज खुले आकाश के नीचे रस्सी द्वारा खड्ड में लटकना मुझे काफ़ी दिलचस्प जान पड़ा। कमर में रस्सी और पीठ पर पानी का बर्त्तन बाँधकर मै नंगे पाँव खड्ड में उतर पड़ा। उतर क्या पड़ा, एक तरह से कुएँ मे लटक पड़ा। सब तरह की आवाज़ बचाते-बचाते मै बड़ी सतर्कता के साथ चश्मे की ओर बढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में बहते पानी की आवाज़ से अन्धकार में ही मुझे मालूम हो गया कि मैं चश्मे के बहुत निकट पहुँच गया हूँ।

चश्मे के किनारे पहुँचने से क्षण-भर पहले अंधेरे में सहसा एक चमकती-सी चीज़ पर मेरी निगाह गई। उसे देखकर मै चौंका और तत्क्षण मेरा हाथ रिवाल्वर की ओर बढ़ा ही था कि लगभग उसी क्षण मैंने पाया कि सहसा दो शक्तिशाली हाथ मेरे गले के इर्द-गिर्द पड़ गए है और यह भी कि उन हाथों की ज़बरदस्त जकड़ से यदि मैं छूट न पाया, तो जीवन भर का पूरा हिसाब-किताब, सिर्फ़ कुछ ही क्षणों के बाद, मुझे यमराज के मुनीम चित्रगुप्त के सामने पेश करना पड़ेगा। पूरी शक्ति लगाकर अपना रिवाल्वर दुश्मन की छाती पर खाली करने को मैं तैयार हुआ ही था कि उसके साथ-ही-साथ आस्मान में एक बड़ी आतिशबाज़ी-सी छूटी, जिससे सभी दिशाएँ एकाएक प्रकाशित हो उठीं। मेरी पिस्तौल गरजने से पहले ही सहसा उन दोनों बलिष्ठ हाथों ने मुझे छोड़ दिया और अपने अत्यन्त निकट से अपने गहरे दोस्त लेफ्टिनेण्ट सज्जनसिंह की आश्चर्य-भरी हल्की-सी चीख़ मुझे

सुनाई दी। चश्मे के किनारे एक घनी झाड़ी की आड़ में हम दोनों दोस्त गले लगकर मिले। मालूम हुआ कि हमारी ही तरह सज्जनसिंह भी केवल एक सिपाही के साथ पिछले दस दिनों से एक पहाड़ी कन्दरा में छिपे हुए हैं। खैर, रात के दो बजते-बजते सज्जनसिंह और उनके साथी को लेकर मैं अपनी खोह में वापस आ गया।

सज्जनसिंह के आने से हमारी खोह में जैसे एक नए जीवन का संचार हो गया। सज्जनसिंह बहुत ही मज़ाकिया और हास्यप्रिय हैं। उनके कारण उस नरक की यातना भी कुछ हद तक कम हो गई। इसका एक कारण और भी था। सज्जनसिंह को कबूतर पालने का ख़ास शौक था। हर समय वह एक-न-एक कबूतर अपने पास रखा करते थे और अबसे सिर्फ़ दो दिन पहले उन्होंने एक कबूतर के पैरों में एक पुर्ज़ा बाँध कर उसे हमारे हेड-क्वार्टर्स की ओर उड़ा भी दिया था। इस पुर्ज़े मे चिह्नमयी भाषा में उन्होंने सभी आवश्यक बातों का निर्देश कर दिया था।

उस कबूतर की बात को लेकर हम लोग जैसे दिन-रात व्यस्त रहते थे। कबूतर अब तक किस जगह पहुँचा होगा; हेड-क्वार्टर्स तक वह पहुँच भी पाएगा या नहीं; कहीं वह शत्रु के हाथ तो नहीं पड़ जाएगा; अगर वह हेड-क्वार्टर्स तक पहुँच ही गया, तो वहाँ क्या कार्रवाई की जाएगी; सहायता जल्दी-से-जल्दी कब तक पहुँच सकेगी, आदि बातों के सम्बन्ध में हम सब लोग बहुत धीरे-धीरे, दिन और रात, बातें किया करते थे। अनेक सम्भावनाओं के सम्बन्ध में हम लोगों में शर्त्तें भी बदी गईं। हरएक बात को ज़रा-सी देर के बाद किसी-न-किसी नए पहलू से देखने का प्रयत्न किया जाता था। यही कारण था कि शत्रु से पूरी तरह घिरे रहने और कितने ही दिनों से एकदम भूखे रहने के बावजूद भी हम लोग जिस-किसी तरह समय निकाल रहे थे।

कबूतरों की किस्मों और उनके कारनामों के सम्बन्ध में उन दिनों जितनी बातें हम लोगों ने कीं, उनके संग्रह-मात्र से एक नया कबूतर-पुराण तैयार हो सकता है। किस तरह कबूतर मनुष्य से घृणा करता है, किस तरह

वह पति-पत्नी व्रत निबाहता है, किस तरह वह बच्चों की परवरिश करता है और किस-किस ढंग से वह मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र बनाया जा सकता है --इन सब के सम्बन्ध में लेफ्टिनेण्ट सज्जनसिंह हर समय और हर रोज़ नई-से-नई बातें सुनाया करते थे।

किन्तु एक बात देखकर हम लोगों के आश्चर्य का अन्त न रहा। जिस दिन से हमारी खन्दक में रामकथा की तरह यह कबूतर-चर्चा छिड़ी थी, उसी दिन से हमारे कमाण्डर युवराज अवधनारायण सिंह जैसे एकदम गुम-सुम-से बन गए थे। उन्होंने एक बार भी इस चर्चा में कोई दिलचस्पी नहीं ली। बल्कि कबूतर का नाम भी उनके कानों में न पड़े, इसीलिए मानो वे हम सब से अलग होकर खन्दक के सबसे भीतरी भाग में अकेले जा बैठते थे। हम लोगों को यह एक अचम्भा-सा प्रतीत हुआ कि आखिर कबूतर जैसे निरीह पक्षी से एक मनुष्य, विशेष कर भारत की एक रियासत का युवराज, इस तरह घृणा क्यों करता है। यह देखकर हम लोगों को और भी आश्चर्य होता था कि युवराज की दाहिनी बाँह पर नीले कबूतरों की एक जोड़ी का चित्र अंकित था। हम सब को यह मालूम था कि कबूतरों की जोड़ी का यह चित्र युवराज अवधनारायण की रियासत का राजकीय चिह्न है।

इसी तरह से कितने ही दिन बीत गए। मालूम होता था, जैसे कितनी ही सदियाँ हम लोगों ने इस अंधेरी, सीलभरी और गरम खोह में बिता दी हैं। न तो वह कबूतर वापस आया, न कोई मदद आई, न हमारी कबूतर-चर्चा समाप्त हुई और न युवराज अवधनारायण की कबूतरों के बारे मे इस असाधारण चुप्पी का रहस्य ही मालूम हुआ।

आख़िर एक दिन लेफ्टिनेण्ट सज्जनसिंह ने घेर-घार कर जिस-किसी तरह युवराज को इस बात के लिए तैयार कर ही लिया कि वे कबूतरों के सम्बन्ध में अपने ज्ञान की कोई सच्ची घटना सुनाएँ। और मैं निस्संकोच होकर कह सकता हूँ कि उस भयावनी गुफ़ा में, एक लम्बे उपवास के बाद, युवराज अवधनारायण से हम लोगों ने जो सच्ची घटना सुनी, उससे बढ़कर प्रभावित करने वाली कबूतरों के सम्बन्ध में कोई और घटना मैंने आज तक

नहीं सुनी। एक ठण्डी साँस लेकर बड़ी धीमी आवाज़ में युवराज ने कहना शुरू किया--

"मेरे जन्म से बहुत पहले मेरे चौथे प्रपितामह के राज्यकाल की घटना है। उन दिनों पूर्वी बिहार और बंगाल के प्रान्त अनेक छोटे-छोटे और स्वतन्त्र राज्यों में बँटे हुए थे। मेरे चौथे प्रपितामह महाराज सिंहबाहु उन दिनों युवक थे और उनकी महत्वाकांक्षा थी कि सारे बंगाल को वह अपने अधीन कर लें।

"अराजकता और अशान्ति के उस युग में भी उत्तर-भारत के सभी राजकीय घरानों में काश्मीर की राजकुमारी उमा के सौन्दर्य की चर्चा ज़ोरों के साथ होने लगी और भारत-भर के सभी युवक राजकुमार इस काश्मीरी राजकुमारी से विवाह करने के लिए लालायित हो उठे। नवयुवक सिंहबाहु को भी राजकुमारी उमा की इस चर्चा ने अपनी ओर आकृष्ट किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजकुमारी के प्रसिद्ध सौन्दर्य को देखने की इच्छा भी उनके जी में अवश्य उत्पन्न हुई होगी; परन्तु उससे भी बढ़कर राजकुमारी की एक और बात ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया। वह यह कि सिंहबाहु के समान राजकुमारी उमा को भी कबूतर पालने का बहुत शौक था और उसके पास एक जोड़ी कबूतर इस तरह के थे, जिनके मुकाबले के कबूतर और कहीं नहीं पाए जाते। कबूतरों की इस जोड़ी की खूबी यह थी कि वे अपने मालिक के जी की बात स्वयमेव और खूब अच्छी तरह समझ लेते थे। एक बार जिस व्यक्ति से उनका परिचय करवा दिया जाए, उसे वे कभी नहीं भूलते थे और अपने स्वामी के नाम सन्देश लेकर वे बहुत ऊँचाई पर उड़ जाते थे, ताकि नीचे पृथ्वी पर से उन्हें कोई देख न सके।

"नौजवान सिंहबाहु के जी में यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि वे इन कबूतरों और उनकी अनन्य सुन्दरी स्वामिनी को एक साथ अपना बना लें और इसी संकल्प से बिना किसी को सूचना दिए, केवल अपने चार मित्रों के साथ वे १२०० मील की यात्रा के लिए चल दिए। महाराज सिंहबाहु के इन

चार साथियों में एक बहुत ही अच्छा गायक था, दूसरा अत्यन्त श्रेष्ठ बेला और इसराज बजाने वाला था और बाकी दो ऊँची श्रेणी के योद्धा थे। काश्मीर पहुँचकर महाराज सिंहबाहु की जैसे आँखें खुल गईं। हमारा बंगाल भी कम सुन्दर नहीं है; परन्तु यह धरती-माता किसी एक स्थान पर इतनी मनोमोहिनी और दिव्यरूपा हो सकती है, इस बात की महाराज सिंहबाहु ने कल्पना भी न की थी।

"काश्मीर पहुँचने के ५–६ दिन बाद की बात। रात का समय था और रात चाँदनी थी। कमल के सैकड़ों-हज़ारों छोटे-बड़े फूलों से भरी डल-झील में महाराज सिंहबाहु एक शिकारे में बैठ कर सैर कर रहे थे। सब तरफ़ सन्नाटा था। स्वच्छ आकाश में चाँद चमक रहा था। झील के स्वच्छ जल में छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं और उन पर चाँद का प्रतिबिम्ब इस तरह प्रतीत होता था, जैसे ढेर-की-ढेर चाँदी हज़ारों-लाखों अत्यन्त हल्के और उज्ज्वल तैरते टुकड़ों में सम्पूर्ण झील की सतह पर अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से फैला दी गई है। चारों ओर के ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ़ चमक रही थी। सिंहबाहु की आज्ञा से मल्लाहों ने चप्पू चलाने बन्द कर दिए और निशीथ-सौन्दर्य के उस मादक वातावरण में उनका शिकारा धीरे-धीरे स्वयं एक ओर को बहने लगा।

"सहसा बहुत दूर पर एक लम्बा शिकारा तेज़ी से बढ़ता हुआ दिखाई दिया। महाराज सिंहबाहु समझ गए कि सदा के समान राजकुमरी उमा डल-झील की सैर के लिए निकली है। इसी अवसर के लिए वे बाज़ों की एक खास जोड़ी अपने साथ बंगाल से लाए थे। इन बाज़ों को एक विशेष प्रकार से शिकार खेलने का अभ्यास था। महाराज सिंहबाहु ने दोनों बाज़ों की गर्दन पर प्यार से हाथ फेरा और उन्हें अपने हाथों द्वारा एक कोमल-सी गति देकर आकाश में उड़ा दिया। जैसे ही वे दोनों बाज़ बिना आवाज़ किए उस लम्बे शिकारे की ओर बढ़े, महाराज ने अपने गायक मित्र से कहा कि वह किसी अत्यन्त करुण राग में एक गीत गाए। बहुत शीघ्र सन्नाटा-भरी झील का वह भाग जैसे अत्यन्त मधुर स्वर में रो उठा।

इस करुण वातावरण को इसराज से निकलती हुई करुणतम लय ने जैसे और भी अधिक द्रावक बना दिया।

"पाँच मिनट भी न बीते होंगे कि महाराज सिंहबाहु के दोनों बाज़ दो सफ़ेद कबूतरों को दबोचे हुए शिकारे पर वापस आ पहुँचे। दोनों कबूतर बहुत अधिक घबरा गए थे; परन्तु उन्हें ज़रा भी चोट नहीं आई थी। इन बाज़ों को इसी तरह की शिक्षा दी गई थी। महाराज सिंहबाहु ने दोनों कबूतरों को अपनी बाहुओं में ले लिया और वे उन्हें प्यार से सहलाने लगे। दूर पर का वह लम्बा शिकारा बड़ी तेज़ी से इसी ओर आने लगा। उस पर जो घबराहट-भरा शोर हो रहा था, वह भी अब यहाँ से साफ़-साफ़ सुनाई देने लगा। इस पर भी महाराज सिंहबाहु के शिकारे पर का वह करुण और रुलाने वाला संगीत उसी तरह जारी रहा।

"राजकुमारी उमा बहुत घबराई हुई दशा में अपने शिकारे के बीचोंबीच खम्भे का सहारा लिए खड़ी थी। दो बाज़ों द्वारा एकाएक उनके दोनों कबूतरों का अपहरण उन्हें अर्धरात्रि के दुस्वप्न के समान प्रतीत हो रहा था। सिंहबाहु के मित्र का एकदम नए प्रकार का यह गायन सुनकर राजकुमारी के शिकारे पर का शोर एकाएक बन्द हो गया और चाँदनी में यह साफ़ दिखाई देने लगा कि अपने प्यारे कबूतरों पर इस तरह अचानक हो गए आक्रमण के कारण बहुत अधिक उद्विग्ना राजकुमारी उमा की आँखों में कामरूप का यह द्रावक संगीत सुनकर बरबस आँसू भर आए हैं।

"राजकुमारी के शिकारे को अपने निकट आया देखकर महाराज सिंहबाहु की आज्ञा से वह संगीत इस तरह रुक गया, जैसे चलते-चलते सहसा पानी की धार रुक जाए। महाराज सिंहबाहु ने अपने आसन से उठकर बड़े कोमल स्वर से कहा--"क्षमा कीजिए, राजकुमारी ! ये कबूतर आप के ही हैं क्या ?"

"दोनों कबूतरों को एक अपरिचित विदेशी युवक के हाथों में भला-चंगा देखकर राजकुमारी को क्रोध नहीं आया। कबूतरों के बच जाने

पर स्वभावतः उनके जी की पहली प्रतिक्रिया प्रसन्नता ही की थी। उसी समय राजकुमारी को बड़ी भद्रता के साथ उनके कबूतर वापस करते हुए सिंहबाहु ने बड़े नम्र शब्दों में क्षमा माँगी और यह भी कहा कि बाजों के इस बड़े अपराध के बदले वे अपने ये दोनों अत्यन्त सधे हुए बाज भी राजकुमारी को भेंट करते हैं।

"इस तरह महाराज सिंहबाहु ने राजकुमारी उमा से परिचय प्राप्त किया और यह परिचय क्रमशः इतना अधिक बढ़ गया कि कुछ ही दिनों के बाद राजकुमारी उमा मेरी चौथी प्रपितामही बन गईं। महाराज बहुत शीघ्र स्वदेश लौट आए।

"इस विवाह के बाद के पाँच वर्ष दोनों ने बहुत ही आनन्द से काटे। यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि महाराज सिंहबाहु ने इन पाँच वर्षों में अपना राज्य पहले की अपेक्षा कम-से-कम सात गुना विस्तृत कर लिया। यह भी एक सचाई है कि महाराज सिंहबाहु की इन विजय-यात्राओं का सबसे बड़ा श्रेय महारानी उमा के उन दोनों कबूतरों को ही था। अपनी घिरी हुई सेना की सूचना देना, शत्रु के भेद लेकर समय पर पहुँच जाना आदि काम इन कबूतरों ने पूरी दक्षता से किए। सदैव वे अपने मालिक के जी की बात को ठीक-ठीक समझते रहे और इस सम्बन्ध में उनसे कभी एक बार भी ग़लती नहीं हुई।"

लेफ्टिनेण्ट सज्जनसिंह ने आश्चर्य से पूछा--"कभी एक बार भी उनसे ग़लती नहीं हुई?"

युवराज अवधनारायण सज्जनसिंह के इस प्रश्न का उत्तर जैसे जानबूझ कर टाल गए और उन्होंने कहानी जारी रक्खी--"महाराज सिंहबाहु की यह असाधारण सफलता देखकर उनके शत्रुओं और उनके प्रतिद्वन्द्वियों ने एक षड्यन्त्र रचा और यह निश्चय किया कि वे सब एक साथ मिलकर सिंहबाहु के राज्य पर आक्रमण करें। महाराज सिंहबाहु को यह सूचना मिल भी गई; परन्तु सब प्रयत्नों के करने के बावजूद भी वे अपने शत्रुओं में फूट नहीं डाल सके। महाराज अब के सचमुच घबरा गए, क्योंकि उनकी

सम्पूर्ण सेना की अपेक्षा उन पर आक्रमण करने वाली सेना की संख्या कम-से-कम तीन गुना थी और उन सब को एक साथ लड़ने की यथेष्ट शिक्षा दी गई थी। फिर भी महाराज अपने शत्रुओं का सामना करने के लिए तैयार हो गए।

"राजधानी से युद्ध का मैदान लगभग २०० मील था। लड़ाई के लिए चलन से पूर्व महाराज सिंहबाहु जब महारानी से मिलने गए, तो महारानी ने उनसे कहा---'प्रियतम, इस बार आपकी सबसे बड़ी परीक्षा है। इस लड़ाई में यदि आप जीत गए, तो सम्पूर्ण उत्तर-पूर्व भारत में आपका साम्राज्य स्थापित हो जाएगा। मेरी हार्दिक सदभिलाषाएँ कवच बनकर लड़ाई के मैदान में आपकी रक्षा करेंगी। परन्तु यदि इस महायुद्ध में आप वीरगति प्राप्त कर गए, तो मैं अवश्य ही यहाँ चिता में जलकर अपने प्राण दे दूंगी।'

"महाराज अपनी प्यारी पत्नी की यह बात सुनकर उसे सान्त्वना देने वाले ही थे कि उमा ने अपनी बात जारी की---'देखो प्यारे! मुझे मना मत करो। तुम्हें मालूम है कि मैं तुम्हारी सब बातें मान जाऊँगी; परन्तु यह बात कभी नहीं मानूंगी। मेरे ये दोनों कबूतर अब बूढ़े हो गए हैं; इनसे अब अधिक काम नहीं होता। अबके मैं इनसे यही एक अन्तिम काम लेना चाहती हूँ। देखो प्यारे, अपने किसी विश्वस्त आदमी से कह देना कि यदि युद्ध-भूमि में तुम वीरगति को प्राप्त कर जाओ, तो वह इन कबूतरों को आकाश में खुला छोड़ दे। ये दोनों कबूतर राह में किसी भी जगह रुके बिना तेज़ी से मेरे पास पहुँच जाएँगे और इन्हें देखकर मैं समझ जाऊँगी कि मेरे प्राणनाथ अब स्वर्ग में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और उसी क्षण मैं भी चिता में जल मरूँगी।'

"महाराज सिंहबाहु को अपनी शक्ति पर यथेष्ट भरोसा था। इस भरी जवानी में मर जाने की उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। साथ ही वे देख रहे थे कि उनकी प्राणप्यारी उनके मरने की सम्भावना और अपने जल जाने का ज़िक्र हँसते-हँसते कर रही है। वह जरा भी घबराई नहीं है। इस कारण उन्होंने महारानी से उक्त वादा भी कर लिया।

"उमा से विदा लेकर सिंहबाहु चले गए और युद्ध के मैदान में वे बड़ी बहादुरी और समझदारी से लड़े। लड़ाई से पहले महारानी उमा के दोनों कबूतर उन्होंने एक पिंजरे में बन्द कर अपने मन्त्री के सुपुर्द कर दिए और उससे कह दिया कि यदि अचानक मेरी मौत हो जाए, तो इन दोनों कबूतरों को उसी वक्त, पिंजरे की क़ैद से मुक्त कर देना। पिंजरा खुलते ही उन्हें जो काम करना है, वह उन्हें पहले ही से ज्ञात है।

"लगभग १५ दिनों तक खूब घमासान लड़ाई हुई और अन्त में महाराज सिंहबाहु इस बड़ी लड़ाई में भी विजयी हुए। दुश्मनों की सेनाएँ तितर-बितर होकर भाग गईं। अपनी विजयी सेना को लेकर महाराज सिंहबाहु बड़ी शीघ्रता के साथ राजधानी की ओर रवाना हुए। अपनी जीवन की सबसे बड़ी विजय के बाद उनका इतनी तेज़ी से अपनी प्रियतमा की ओर जाना स्वाभाविक ही था। क्रमशः अपनी सेना के काफ़ी बड़े भाग को पीछे छोड़कर वे बहुत आगे निकल गए। ४ दिनों की दौड़ के बाद जहाँ उन्होंने पड़ाव डाला, वहाँ से उनकी राजधानी केवल ३० मील ही रह गई थी।

"साँझ हो गई थी और महाराज के खेमे डाल दिए गए थे। महाराज बड़ी उमंग में भरकर अपने खेमे के बाहर धीरे-धीरे टहल रहे थे। इसी समय एक अत्यन्त भयंकर दुर्घटना हो गई। मन्त्री के नौकर ने साफ़ करने के इरादे से पिंजरे का दरवाज़ा खोला! मालूम होता है, क़रीब एक महीने की लगातार क़ैद से दोनों कबूतर तंग आ गए थे। पिंजरे का दरवाज़ा खुलते ही वे दोनों तेजी से आकाश की ओर उड़ गए।

"साँझ के उस झुटपुटे प्रकाश में दूर ही से महाराज सिंहबाहु ने इन दोनों कबूतरों को आकाश में उड़ते हुए देखा और उनका माथा ठनका। दौड़कर वे मन्त्री के खेमे की ओर बढ़े और उन्होंने देखा कि मन्त्री का नौकर खाली पिंजरा लिए खेमे से बाहर निकल रहा है। महाराज सिंह-बाहु पर जैसे बिजली पड़ गई। वे पूरे ज़ोर के साथ चीखे—"घोड़ा! मेरा घोड़ा लाओ!'

"सम्पूर्ण कैम्प में सन्नाटा छा गया और उस घटना के केवल दो ही मिनट बाद महाराज सिंहबाहु अकेले ही अपनी राजधानी की ओर सरपट घोड़ा दौड़ाते हुए दिखाई दिए। पश्चिम दिशा में सूरज डूब गया था; परन्तु आकाश में अभी लाली बाक़ी थी। इस लाली में बहुत दूर पर वे दोनों सफ़ेद कबूतर क्षणभर के लिए ओस के दो कतरों की तरह दिखाई दिए और उसके बाद वे छिप गए। इधर पृथ्वी पर महाराज सिंहबाहु संसार की सभी बातें भूलकर अपनी राजधानी की ओर उड़ चले। प्रकाश के परिन्दों और उस तेज़ घोड़े में परस्पर एक अजीब ढंग की होड़ होने लगी।

"३० मीलों में एक क्षण का भी आराम लिए बिना जब महाराज सिंह-बाहु अपने महलों के नज़दीक पहुँचे, तो रात का अँधेरा सभी ओर पूरी तरह से व्याप्त हो चुका था। इस अंधेरे में दूर से ही उन्हें दिखाई दिया कि महल के आँगन में एक बड़ी-सी चिता धू-धू करके धधक रही है। उन्हें यह भी साफ़ दिखाई दिया कि उस धधकती हुई चिता के ठीक ऊपर दो कबूतर बड़ी बेचैनी के साथ चक्कर काट रहे हैं। क्षण-भर में महाराज सिंहबाहु उस चिता के नज़दीक आ पहुँचे। पसीने से लथपथ हालत में वे घोड़े से कूद पड़े और सहसा उनके हृदय को बेधकर अपनी प्राणप्यारी का नाम निकला—— 'उमा! उमा!!'

"महाराज की इस पुकार का जवाब जैसे आस्मान में उड़ते हुए उन दोनों निरीह पक्षियों ने दिया। दोनों कबूतर बहुत ही करुण स्वर में एक बार रोए——'गुटर-गूँ! गुटर-गूँ!!' और उसके बाद वे दोनों भी चिता में जा गिरे! महाराज सिंहबाहु वहाँ खड़े नहीं रह सके। महल के कितने ही कर्मचारी वहाँ एकत्र हो गए थे। वे लगभग ज़बरदस्ती महाराज को इस अत्यन्त करुण दृश्य से दूर ले गए।"

इतना कहकर युवराज अवधनारायण चुप हो गए। लड़ाई के उस भयंकरतम वातावरण में भी हम लोगों ने पाया कि हमारी आँखों के कोर आप-से-आप भीग आए हैं! और यह भी एक अजीब इत्तिफ़ाक की बात है कि उसी दिन हम लोगों के पास सहायता पहुँच गई और पूरे २७ दिन के बाद हमें उस रौरव नरक से छुटकारा मिला।

टाँगेवाला

आँधी का एक जबरदस्त झोंका आया और उसके बाद हल्की-हल्की बूँदा-बाँदी शुरू हो गई। रात का अन्धकार सभी ओर व्याप्त था। लाहौर स्टेशन का शोरगुल इस समय तक लगभग समाप्त हो गया था और दिन-भर की अन्तिम गाड़ी भी रवाना हो चुकी थी। स्टेशन की बहुत-सी बत्तियाँ जब बुझा दी गईं, तो पीरू ने भी अपने कमज़ोर-से घोड़े पर कसकर एक चाबुक जमाया और गुस्से में भरकर कहा—"चल बे कम्बख्त ! तीन घंटे तक लगातार यहाँ इन्तज़ार करते रहने पर भी तुझे आने-दो-आने तक की कोई सवारी नहीं मिली !"

तड़फड़ाकर घोड़ा अड्डे से बाहर निकला और दुलकी चाल से अपने घर की ओर बढ़ने लगा। पीरू का बड़बड़ाना अभी जारी था। वह बके जा रहा था—"ये पोलीसवाले बड़े पाजी हैं। जो टाँगेवाला इन्हें दो-चार आने भेंट-पूजा न दे, उसे सवारी मिल ही नहीं सकती और यह घोड़ा भी तो गधे से बढ़ कर कम्बख्त है। मर्दुए को छः साल से लगातार इसी टाँगे में जोत रहा हूँ, कभी तबीयत भरने लायक कमाई इससे नहीं हुई !"

वह नाममात्र की बूँदा-बाँदी बीच ही में रुक गई। मिट्टी भरी हवा का एक जबरदस्त झोंका उठा और पीरू की आँखों तथा सफेद दाढ़ी से टकराता हुआ आगे निकल गया। पीरू निरन्तर बके जा रहा था, इससे मिट्टी के बहुत-से कण उसके मुँह में भी घुस गए, तब बुड्ढे को जो ज़बरदस्त खाँसी उठ खड़ी हुई, उसने बहुत देर तक उसका साथ न छोड़ा।

पिछले सैंतीस बरसों से पीरू लाहौर की सड़कों पर तांगा चला

रहा है। उसकी उम्र इस वक्त करीब पचपन साल की होगी। माँ-बाप ने उसका नाम पीरबख्श रखा था; परन्तु पचपन साल की उम्र तक पहुँच कर भी वह पीरू से पीरबख्श नहीं बन पाया। उसने शादी की; दो बच्चों का बाप बना; दुनिया का तजुर्बा हासिल किया; मगर वह रहा पीरू का पीरू ही। बचपन में, जवानी में, यहाँ तक कि बुढ़ापे में भी——उसे कभी इज़्जत नसीब नहीं हुई। पीरू की घर वाली का, बहुत समय हुआ, देहान्त हो चुका है। उसकी लड़की शादी कर के ससुराल चली गई है और उसका इकलौता लड़का बड़ा होकर रावलपिण्डी में किसी साहब का बैरा है। १८ बरस की उम्र में, जब पीरू ने पहले-पहले ताँगा चलाना शुरू किया था, तब भी वह अकेला ही था और आज ५५ साल का होकर भी वह अकेला ही रह गया है।

आँधी का झोंका निकल गया और बुड्ढे कोचवान का बड़बड़ाना भी बन्द हो गया। पीरू का खच्चरनुमा घोड़ा बड़ी सुस्त चाल से अपने घर की ओर बढ़ा जा रहा था। सड़क पर इस वक्त बहुत ही कम आवा-गमन था, इससे पीरू का ध्यान सड़क की ओर नहीं था। सहसा पीरू का कमजोर-सा घोड़ा चौंककर एक ओर को हटा और उसी क्षण एक लँगड़े अपाहिज की करुण-सी आवाज़ सड़क पर सुनाई दी। पीरू ने देखा कि एक लँगड़ा भिखमंगा उसके ताँगे के नीचे आने से बाल-बाल बच गया है। लँगड़े को चोट तो नहीं आई, मगर घोड़े से टकराकर वह गिर जरूर गया। पीरू ने टाँगा रोक दिया। उसकी जेब में तीन पैसे पड़े थे, इनमें से दो पैसे उसने लँगड़े को दिए और इसके बाद वह आगे बढ़ा।

कोई टाँगे वाला किसी भिखमंगे को पैसे दे, यह बात असाधारण थी; फिर भी एक और भिखमंगे ने दूर ही से पीरू की उदारता भाँप ली और रोनी-सी आवाज़ में भीख माँगता हुआ वह पीरू के टाँगे के पीछे-पीछे दौड़ने लगा। पीरू ने उसे दुतकारा, चाबुक मारने की धमकी दी और उसकी ओर हाथ भी बढ़ाया। मगर वह भिखमंगा भी पूरा जिद्दी था, हटा नहीं। आख़िर लाचार होकर पीरू ने चाबुक चला ही दिया। भिखमंगा,

बारह-तेरह साल का एक लड़का था, वह तिलमिलाकर परे हट गया। सहसा पीरू ने अपने जेब से वह बचा हुआ पैसा भी निकाला और बड़बड़ाते हुए उस लड़के की ओर फेंक दिया--"नालायक कहीं के! खाली टाँगों का भी पीछा नहीं छोड़ते! दुनिया-भर में जिसे देखो, उसे अपनी ही पड़ी है!"

रात की उस सुनसानप्राय सड़क पर भी, न-जाने कहाँ-कहाँ से, तीन-चार मंगते निकल आए और पीरू के टाँगे के पीछे दौड़ने लगे। आखिर बुड्ढे को हार माननी पड़ी। उसने अपने मरियल-से घोड़े को वह इशारा किया, जिससे अनायास ही वह हवा की तेजी से दौड़ने लगा। सभी मंगते कुछ ही क्षणों मे बहुत पीछे छूट गए।

माल रोड पर पहुँच कर पीरू का घोड़ा पुनः अपनी स्वाभाविक चाल से चलने लगा। सड़क पर कोई पैदल व्यक्ति आस-पास से होकर कहीं आ-जा भी रहा है या नहीं, यह देखे बिना ही पीरू अपनी बरसों की सहज आदत से सहसा आवाज़ दे उठा--"ज़िला कचहरी! अजायबघर! कृष्णनगर!"

और अचानक उसी वक्त एक नारी-मूर्ति आगे बढ़ी और उसने धीरे से आवाज़ दी--"टाँगेवाले!"

टाँगा रुक गया और वह स्त्री किसी तरह की पूछताछ किए बिना ही टाँगे पर बैठ गई। पीरू ने पूछा--"किधर जाना है माई? कृष्ण-नगर?"

उस स्त्री ने धीरे से कहा--"हाँ।"

टाँगा बढ़ने लगा, और वह स्त्री टाँगे की पिछली सीट पर, पीरू की ओट में, सिकुड़ कर बैठ गई। उसने अपना मुँह पीरू के सिर के पीछे छिपा लिया, ताकि सड़क की जगमगाती हुई बत्तियों का प्रकाश उसके चेहरे पर न पड़ सके।

पीरू ने दुनिया देखी थी। उसका माथा ठनका, फिर भी कुछ देर तक तो वह यही सोच कर चुपचाप बढ़ता चला गया कि हमें क्या लेना है,

जो किसी बात की पूछताछ करें। मगर अन्त में उससे रहा नहीं गया और उसने पूछ ही लिया--"क्यों माई, कृष्णनगर में किस जगह जाना है ?"

कोई जवाब नहीं मिला।

पीरू का शक बढ़ गया। मगर उसने मुँह से कुछ नहीं कहा। उसका टाँगा चलाना बदस्तूर जारी रहा। टाँगा अजायबघर के निकट पहुँचा, तो सड़क पर बिलकुल सन्नाटा था। भंगियों की तोप के नज़दीक एक सन्तरी खड़ा था। उसने जब देखा कि ताँगे पर एक स्त्री अकेली सवार है और वह भी अपने को कोचवान की आड़ में छिपाने का भरसक प्रयत्न कर रही है, तो उसने सीटी दे दी।

टाँगा खड़ा हो गया। सन्तरी आगे बढ़ा और उसने पीरू से पूछा--"किधर जा रहे हो ?"

पीरू ने जवाब दिया--"कृष्ण नगर।"

"किधर से आ रहे हो ?"

"ग्वालमण्डी से।"

"कृष्णनगर में किसके यहाँ जाओगे ?"

"माई का अपना मकान है।"

वह स्त्री थोड़ा-सा परदा कर के सिमटी हुई चुपचाप बैठी थी, इससे सिपाही की यह हिम्मत न हुई कि वह उससे भी कुछ पूछे। उसने टाँगे का नम्बर नोट कर लिया और पीरू को इस बात की इजाजत दी कि वह आगे बढ़े।

[२]

कृष्णनगर की पूरी सीमा पार कर पीरू का टाँगा ऐसी जगह पर आ पहुँचा, जहाँ आबादी बहुत कम थी। आख़िरकार एक पेड़ की ओट मे पीरू ने टाँगा खड़ा कर दिया। मगर उस औरत ने मानो न बोलने की कसम खा रखी थी। न तो वह बोली और न हिली-डुली ही।

बूढ़ा पीरू आख़िर खिज उठा। यह अच्छा तमाशा है। रात के वक्त एक औरत अकेली आकर टाँगे पर बैठ जाए। फिर न तो वह उतरने

का नाम ले और न बोले ही। पीरू ने ज़रा रूखी-सी आवाज़ में कहा--"माई ! आखिर तुम्हें जाना किस जगह है ? मुझे भी तो घर जाकर टांगा खोलना है।"

माई क्षण भर तो चुप रही। उसके बाद जैसे अपने हृदय का सम्पूर्ण साहस संग्रह करके उसने कहा--"आज रात के लिए मुझे अपने घर पर आसरा दे सकोगे, बाबा ?"

पीरू इस बात के लिए हरगिज़ तैयार नहीं था। वह अभी तक इस औरत के सम्बन्ध में और ही तरह की कल्पनाएँ कर रहा था। इस करुण-सी प्रार्थना के उत्तर में पीरू ने सीधे ढंग से इनकार कर दिया।

वह औरत अपने सिर के आवरण को सँभालती हुई एक ठंडी साँस लेकर धीरे-धीरे टाँगे से नीचे उतर गई और वृक्ष के तने के पास जाकर खड़ी हो गई। जैसे और सब ओर से निराश होकर वह एक पेड़ से आश्रय माँगने आई हो।

पीरू के पके हुए दिल को भी क्षण-भर के लिए सदमा पहुँचा। फिर भी उसने टाँगे को वापस मोड़ा और दियासलाई जलाकर बीड़ी सुलगाई। शायद इस इरादे से भी कि दियासलाई के प्रकाश में वह उस औरत का चेहरा देख ले।

बीड़ी का एक गरमागरम कश खींचकर जैसे पीरू के दिल की नरमी, दूसरे शब्दों में कमजोरी, दूर हो गई। वह तो एक टाँगेवाला है। उसके टाँगे पर सुखी-दुखी, अच्छे-बुरे, गरीब-अमीर सभी तरह के लोग सवार होते हैं। लोगों के दुख-दर्द से वह अपना नाता क्यों जोड़े ? वह तो स्थल का मल्लाह है। एक जगह से सवारी ली, दूसरी जगह उतार दी। बस, इतना ही। वह सवारी औरत है, मर्द है, सुखी है, दुखी है, सन्तुष्ट है या ज़रूरत-मन्द है, इस सबसे उसे कोई सरोकार नहीं। उसके लिए तो सवारी की जगह यदि मन-डेढ़-मन का कोई बेजान बोझ होता, तब भी वही बात थी। टाँगेवाले का यही धरम है। पीरू ने उस औरत से किराया नहीं माँगा, यही क्या कुछ कम है ? वह लौट पड़ा और चाबुक लगाकर उसने अपने घोड़े

की रफ्तार तेज़ कर दी। क्रमशः वह मील-भर आगे निकल गया। अजायबघर के नज़दीक वह सन्तरी अब भी उसी तरह तैनात खड़ा था। सिपाही ने जैसे पीरू का टाँगा पहचान लिया और वह अब खाली है, यह देखकर मानो उसने सन्तोष की साँस ली।

जब तक बीड़ी सुलगती रही, पीरू ज़िन्दगी की तमाम चिन्ताओं से छुटकारा पाए रहा; मगर ज्यों ही बीड़ी की अन्तिम चिनगारी बुझी, त्यों ही दियासलाई के धुँधले प्रकाश में दिखाई दिया वही करुण-सा मुँह पीरू के सामने आ गया। आख़िर वह बदकिस्मत औरत अगर एक रात उसके यहाँ रह ही जाती, तो उसका क्या बिगड़ जाता? आस्मान में अभी तक बादल छाए हुए हैं। मुमकिन है कि बारिश होने लगे, तब उस बेचारी का क्या हाल होगा!

पीरू ने टाँगा वापस मोड़ दिया। सिपाही अब भी अपनी ड्यूटी पर तैनात खड़ा था।

वह औरत पेड़ की छाया में कब्र-सी सिमट कर पड़ी थी कि पीरू ने उसे धीरे से आवाज़ दी। वह चुपचाप उठ खड़ी हो गई और आकर टाँगे पर बैठ गई। पीरू अब के मील-भर का अधिक लम्बा चक्कर लगाकर अपने घर पहुँचा। वह उस सिपाही से बचना चाहता था।

अगले दिन पीरू को मालूम हो गया कि वह बदकिस्मत हिन्दू औरत एक मुसलमान मेवा-फरोश के चक्कर में पड़कर लाहौर आ पहुँची थी। पाँच-छः महीने के बाद कल ही उस ग़ैर-ज़िम्मेवार नौजवान ने उसे अपने घर से बाहर कर दिया था।

[३]

नूरा अगर जानता कि उसके मज़ाक का इतना भीषण परिणाम हो सकता है तो आज सुबह पीरू से वह उस तरह की छेड़खानी हरगिज़ न करता। अपने बुड्ढे पड़ोसी के साथ उसे आख़िर कोई दुश्मनी तो थी नहीं। आज सुबह जब यों ही बिलकुल निष्काम भाव से, वह बुड्ढे पीरू के घर में प्रविष्ट हुआ, तो वहाँ पर एक हिन्दू औरत को देखकर उसके आश्चर्य

का ठिकाना न रहा। बाईस-तेईस बरस की वह औरत इन टाँगेवालों के लिए देखने-सुनने में कुछ बुरी न थी। यों उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता था। आश्चर्य की अपेक्षा नूरा में विनोद की मात्रा और भी अधिक उग्रता से जागृत हुई। शीघ्रता से वह पीरू के घर से बाहर आया और उसके बाद आठ-दस दोस्तों को, जो अभी टाँगा जोतने की फ़िक्र से बरी थे, बुला लाया। ये सब लोग मियाँ पीरबख़्श के घर पर पहुँचे और बड़े अदब के साथ उन्हें बधाइयाँ देने लगे।

बात यहाँ तक ही रहती, तब तो कोई हर्ज न था। मगर देखते-देखते सारे मुहल्ले में इसी बात की चर्चा होने लगी। बहुत शीघ्र गली के दूसरे छोर पर रहने वाले हिन्दू कोचवानों से भी यह बात छिपी न रही कि कल रात बुड्ढा पीरू किसी हिन्दू औरत को भगा लाया है। बस, फिर क्या था; शाम होते-न-होते लाहौर के हजारों हिन्दू-मुसलमानों ने इस बात को अपनी इज्ज़त का सवाल बना लिया।

हुआ वही, जो ऐसी दशाओं में हिन्दोस्तान में आमतौर से होता है। रात होते-न-होते शहर के उस भाग मे रहने वाले लोगों मे इतनी गरमी पैदा हो गई कि पुलिस के लिए दख़ल देना नितान्त आवश्यक हो गया। थोड़ी-सी छानबीन के बाद रात को भंगियों की तोप के नजदीक ड्यूटी देने वाले सिपाही की गवाही के आधार पर यह निश्चय कर लिया गया कि अवश्य ही पीरू इस स्त्री को कहीं से बहका कर लाया है। इतना प्रमाण काफ़ी था और पीरू को हिरासत में ले लिया गया।

पुलिस जब पीरू को लेकर चली, तो हजारों की संख्या में मुसलमान 'अल्लाहो अकबर!' के नारे लगा रहे थे। उधर हिन्दू भी क्रोध में उबल रहे थे। इस देश के मुसलमान कितने आततायी और पाशविक मनोवृत्ति के है, इस बात का उन्हें एक नया सबूत मिल गया था। एक ने कहा, यू० पी० के एक ताल्लुकेदार की लड़की है, जिसे यह पाजी उड़ा लाया था! दूसरे ने कहा, मैंने अपनी आँखों से देखा है, परियों से बढ़कर खूबसूरत है! तीसरे ने प्रश्न के स्वर में मानो बतलाया, लखनऊ के कालेज में पढ़ती थी

न? चौथे ने झट से टिप्पणी की--वे लोग कितने नासमझ है, जो यह सब देखते-भालते हुए भी अपनी लड़कियों को कालेज की तालीम देते हैं।

पीरू मानो मुसलमानों की निगाह में एक गाजी बन गया था। लोग कहते थे कि उसने कितनी हिम्मत का काम किया है। इसका सवाब उसे खुदा देगा। रात-ही-रात में उसे जमानत पर छुड़वा लाने के लिए चन्दा जमा किया गया और शहर के बड़े-बड़े मुसलमानों की एक कमेटी उसका मुकदमा लड़ने के लिए नियत हो गई। गली-कूचों में मुसलमान वालंटियरों के अनेक छोटे-छोटे जत्थे 'मियाँ पीरबख्श जिन्दाबाद!' के नारे लगाते फिरते थे। जो सम्मान पीरू अपनी जिन्दगी के ५५ सालों में प्राप्त नहीं कर सका था, वह एक ही रात में उसे अनायास प्राप्त हो गया।

अगले दिन जब अपने प्रशंसकों द्वारा दी गई, दस हजार की जमानत पर छूटकर वह हिरासत से बाहर निकला, तो सैकड़ों-हजारों उत्साही कंठों ने "मियाँ पीरबख्श जिन्दाबाद!" के नारों से उसका स्वागत किया। पीरू बेचारा घबरा गया। उसने लोगों को पचास तरह से समझाना चाहा कि वह गाजी-फ़ाजी कुछ नहीं है। मगर उसके कहने से क्या होता है? लोग मानें, तब तो। उसे अपने गले में मालाएँ भी स्वीकार करनी पड़ीं और एक छोटे-मोटे जलूस का प्रधान पात्र भी बनना ही पड़ा।

घर पहुँच कर पीरू ने देखा कि वह औरत एक छोटी-सी कोठरी के भीतर, मानो बहुत-ही डरी हुई दशा में बैठी है। वह इस अजीब और शर्मनाक नाटक की प्रधान पात्री थी। मगर पीरू के घर के बाहर जो दो-चार पुलिसमैन तैनात थे, उनके डर से किसी को उससे कुछ भी कहने की हिम्मत अभी तक नहीं हुई थी।

पीरू को अन्दर आते देखकर वह औरत उठ खड़ी हुई। पीरू ने उससे पूछा--"तुम्हारा नाम क्या है, बेटी?"

उस औरत ने धीरे-से जवाब दिया--"तारा।"

पीरू ने पूछा--"तुम्हारा घर कहाँ है?"

जवाब मिला--"इलाहाबाद।"

पीरू के इन सवालों से तारा हैरान हुई, क्योंकि कल रात ही वह उसे अपना नाम और निवासस्थान बता चुकी थी। क्षणभर की चुप्पी के बाद पीरू ने देखा कि उस अभागिनी की आँखों में आँसू भर आए हैं। पीरू ने बड़ी नरमी के साथ कहा--"घबराओ नहीं बेटी ! मैं तुम पर किसी तरह की आँच न आने दूँगा।"

बूढ़े पीरू की यह सान्त्वना तारा को एक आशीर्वाद के समान जान पड़ी और भरोसा पाकर मानो उसकी रुलाई को स्वच्छन्दतापूर्वक फूट पड़ने का अवसर मिल गया।

[४]

आख़िर बुड्ढे पीरू ने यह साबित कर ही दिया कि वह गाज़ी-फ़ाज़ी कुछ नहीं है। मुकदमे में कोई दम तो था ही नहीं। तारा की स्पष्ट गवाही ने उसका खातमा ही कर दिया।

इस बीच में नगर-निवासियों को गपबाजी का मानो एक नया क्षेत्र मिल गया था। घरों में, सभा-सोसाइटियों में, दूकानों पर, अखबार बेचनेवालों की चिल्लाहटों में और यहाँ तक की पोस्टरों में भी इस नगण्य टाँगेवाले और उसके मुकदमे की चर्चा थी। संसार का कोई अच्छे-से-अच्छा काम करके भी पीरू को वह नेकनामी हासिल न हो सकती थी, जो इस ज़रा-सी बात से अनायास ही उसे प्राप्त हो गई। अपने लोगों में उसकी क़दर बढ़ गई, समाज के बड़े नेता उसकी झोंपड़ी का चक्कर लगा आए और सबसे बढ़कर पुलिस पर भी उसका रौब कायम हो गया। उसका बेटा भी अपने सुर्खरू बाप के दर्शनों का पुण्य प्राप्त करने के उद्देश्य से दो-चार दिनों के लिए लाहौर का चक्कर लगा गया।

मगर प्रतिष्ठा और ख्याति के इस चक्रव्यूह से वह बेवकूफ़ बुड्ढा साफ़ बच कर निकल गया ! मामले का निर्णय पीरू के पक्ष में होते ही अनेक लोग उसके पास यह सलाह लेकर पहुँचे कि वह उस हिन्दू औरत से बाक़ायदा कलमा पढ़वा ले। मगर पीरू ने इस बात से साफ़ इनकार कर दिया। उसके प्रशंसकों को यह देख कर अत्यधिक दुख पहुँचा कि तारा के लिए

पीरू ने न केवल खाने-पीने का प्रबन्ध ही बिलकुल जुदा कर रखा है, अपितु वह उसे अपनी बेटी के समान इज्ज़त से रखता है।

नतीजा यह हुआ कि 'चूहा फिर से चूहा' बन गया। अपने साथियों पर उसकी जो धाक कायम हो गई थी, वह बहुत अंश तक उसी तरह बनी रही; परन्तु जनता ने उसे बहुत शीघ्र भुला दिया। वह फिर से एक मामूली टाँगे-वाला ही रह गया।

[५]

आस्मान में तीन-चार दिनों से बादल घिर रहे थे, इससे मार्च का महीना शुरू हो जाने पर भी लाहौर में सरदी कम नहीं हुई थी। दोपहर का समय था। तारा खा-पीकर कोठरी के अन्दर लेटी हुई थी। अचानक उसी समय पीरू का जवान बेटा रावलपिण्डी से वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने तारा से पूछा--"अब्बा कहाँ हैं ?"

तारा उससे परदा करती थी। उसने धीरे से जवाब दिया--"टाँगा लेकर बाहर गए हैं।"

लड़के ने पूछा--"इस वक्त कब तक वापस आया करते हैं ?"

तारा अभी उसकी इस बात का कोई जवाब नहीं दे पाई थी कि आस्मान से ठंडी-ठंडी बूँदें टप-टप टपकने लगीं। घर की चीजें आँगन में बिखरी पड़ी थीं, तारा उन्हें समेट ही रही थी कि पानी के साथ-साथ हज़ारों-लाखों ओले बरस पड़े। प्रकृति मानो सहसा चिल्ला उठी। आस्मान ने जैसे एक भी क्षण का नोटिस दिए बिना पृथिवी पर चढ़ाई कर दी थी। ठण्डी हवा का एक झोंका आया। वर्षा की बौछार से तारा के वस्त्र कुछ-कुछ भीग गए। उसके शरीर-भर मे एक सिहरन-सी दौड़ गई और वह शीघ्रता से कोठरी के भीतर घुस गई।

ओले अभी तक पड़ रहे थे और आँगन का दरवाज़ा भीतर से बन्द था। सरदी सचमुच बढ़ गई थी और सब ओर असीम कोलाहल मचा हुआ था। घर-भर मे सिर्फ़ दो ही प्राणी थे। पहली थी, भगाकर लाए जाने के

बाद छोड़ दी गई एक अभागिन नारी और दूसरा था एक ग़ैर-ज़िम्मेवार, अशिक्षित अर्धसभ्य युवक।

और सरदी सचमुच बढ़ गई थी !

शाम को बढ़ा पीरू जब घर पहुँचा, तो उसका बुरा हाल था। ओलों की बौछार जब शुरू हुई थी, तो उसका टाँगा किसी नंगी सड़क पर खाली चला आ रहा था और उसकी छत भी उतार कर बाँध दी गई थी। नतीजा यह हुआ था कि पीरू की गंजी खोपड़ी और उसके बूढ़े घोड़े की नंगी पीठ पर 'फ़लक' ने ताक-ताक पर निशाने जमाये थे।

पीरू की दशा सचमुच दयनीय बनी हुई थी। इससे घर पहुँचते ही जब उसने तारा की आँखों में आँसू देखे, तब वह समझा कि ये आँसू सहानुभूति और समवेदना के आँसू हैं। उसने ज़रा-सा मुस्कराकर कहा--'मुझे चोट-वोट कुछ नहीं लगी बेटी ! तुम घबराओ नहीं !"

तारा ने बूढ़े पीरू के चरणों पर सिर रख दिया और कहा--"मुझे तुम क्या मेरे घर तक नहीं पहुँचा सकते बाबा ?"

पीरू आश्चर्य-चकित रह गया। उसी वक्त उसका लड़का कोठरी से बाहर निकल आया। जवान बेटे के मुँह पर शर्म की जो गहरी छाया अंकित थी, उसे बूढ़े बाप की कमज़ोर आँखें देख नहीं पांई। उसने पूछा--"तुम कब आए सादिक ?"

"थोड़ी देर पहले।"

"सब ख़ैरियत तो है न ?"

"हाँ अब्बाजान !"

"ओलों की बौछार से तुम्हें कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई ?"

"नहीं।"

"तुम उस वक्त कहाँ थे ?"

"रेलगाड़ी में।"

"रेल आज बहुत लेट आई होगी" कहकर बुड्ढा पीरू अचानक पूछ बैठा--"तुम अपनी इस बहन को इलाहाबाद तक छोड़ आ सकोगे ?"

सादिक ने बाप की इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। उसी वक्त तारा ने बूढ़े टाँगेवाले का हाथ पकड़ कर कहा--"तुम अपने कपड़े तो बदल लो बाबा! सरदी लग जाएगी।"

[६]

और बुड्ढा सचमुच सरदी खा गया था। सारी रात वह बुखार की बेहोशी में बड़बड़ाता रहा और अगले दिन की सुबह उसकी दशा और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। मुहल्ले-भर के लोग पीरू का हालचाल पूछने के लिए आते-जाते रहे। लोगों ने यही समझा कि सादिक अपने बीमार बाप की तीमारदारी करने के लिए ही रावलपिण्डी से लाहौर आया है।

पीरू की इस बीमारी में तारा ने उसकी वह सेवा की, जो एक लड़की अपने सगे बाप की भी नहीं कर सकती। इस बीमारी में वह धर्म, सम्प्रदाय, छूआछूत, लज्जा आदि की सभी बाधाओं को भूल गई। उसे काम करता देख कर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि वह पीरू की अपनी लड़की नहीं है।

पूरे सात दिन और सात रातों तक मौत से लगातार युद्ध करके जब तारा ने पीरू को जिन्दा बचा लिया, तब तक पीरू इस बात को बिलकुल भूल गया था कि तारा अपने घर लौट जाना चाहती है। वह क्यों लौट जाना चाहती है, इस सम्बन्ध में उसे कुछ भी ज्ञात नहीं था। बाप होकर अपने बेटे पर वह क्योंकर अविश्वास कर सकता था?

सुबह-सुबह तारा के हाथ से गाय का दूध पीते हुए पीरू ने उससे पूछा--"अब भी तुम वापस जाना चाहती हो बेटी?"

तारा ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। शीघ्रता से अपना कार्य समाप्त कर वह वहाँ से हट गई। पीरू को इस बात से बड़ी ठेस पहुँची। उसका मुस्कराता हुआ झुर्रीदार चेहरा एकदम उदास हो गया।

पाँच-छः रोज़ बाद पीरू ने अपने एक जिगरी दोस्त से पूछा--"लाहौर से इलाहाबाद जाने का क्या किराया लगता है?"

वह टाँगेवाला अपने सभी साथियों में सबसे अधिक जानकार माना जाता था। उसने बतलाया--"एक तरफ का ग्यारह रुपए के क़रीब।"

रात के समय पीरू हिसाब लगाने लगा--एक तरफ़ का किराया ग्यारह रुपया। दो आदमियों का बाईस और सादिक के वापस आने का मिला कर तेंतीस। कुल मिलाकर कम-से-कम चालीस रुपयों का इन्तज़ाम करना होगा।

पीरू चिन्तित हो गया। उसके पास कुल मिलाकर २५ रुपये ही थे। अपने बेटे से वह इस बात के लिए पैसे किस तरह माँगे। वह कहीं इनकार कर दे तो! बुड्ढे को घंटों तक नींद नहीं आई। वह उधार भी माँगे तो किससे। कुछ समझ ही न आता था। अन्त में उसे एक उपाय सूझ ही गया, और तब एक ठण्डी साँस लेकर वह इस चिन्ता से छुटकारा पा गया।

पीरू के पास अपने घोड़े को ओढ़ाने के लिए एक बढ़िया कम्बल था, जो उसे अपने बाप से विरासत में मिला था। पीरू इस कम्बल को बहुत सँभाल कर रखता था। इस कम्बल के लिए अनेक सम्पन्न टाँगे वाले उसे पचीस-पचीस रुपया तक देने को तैयार थे। मगर इस कम्बल को बेच डालने का विचार तक भी कभी उसके जी में न आया था। अगले दिन बड़े सुबह अंधेरे मुंह पीरू चुपचाप उस कम्बल को लेकर बाहर निकल गया और जब वह वापस लौटा, तो उसके पास वह कम्बल नहीं था।

[७]

पृथिवी की पिछली छप्पन प्रदक्षिणाओं में अभागे पीरू ने सैकड़ों सुख-दुख सहे थे और उनकी बदौलत उसकी सहनशक्ति बहुत बढ़ गई थी। मगर बदकिस्मत पीरू को अपने बेटे की इस नई कारस्तानी से जो तीव्रतम पीड़ा पहुँची, वह उसके लिए भी अननुभूतपूर्व थी। बुड्ढे पीरू का दिल सचमुच टूट गया।

सब कुछ जानते-बूझते भी तारा सादिक के साथ इलाहाबाद जाने को इसलिए तैयार हो गई थी कि वह बूढ़े पीरू के दिल को ठेस नहीं पहुँचा सकती थी। तारा को साथ लेकर रवाना हुए सादिक को सात दिन हो चुके थे; परन्तु सादिक अभी तक वापस नहीं लौटा था। फिर भी बूढ़े ने इस

बात की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। परन्तु आज दोपहर को जब दिल्ली से आए हुए पुलिस के समन द्वारा पीरू को यह ज्ञात हुआ कि उसका लायक बेटा एक हिन्दू औरत को अपने कब्जे में लाकर उसपर बलात्कार करने की चेष्टा में गिरफ़्तार हुआ है, तब वह सभी कुछ समझ गया।

मोहल्ले-भर मे यह बात फैलते देर न लगी। सादिक ने बहुत बुरा किया है, इस बात से किसी को इनकार न था। परन्तु इस पर भी सभी लोग एकमत थे कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, सादिक को बचाना उनका कर्तव्य है। बूढ़ा पीरू अपनी चारपाई पर गुमसुम बैठा था। उसके मकान मे पड़ोसियों की पूरी सभा जुटी हुई थी। जात-बिरादरी के सभी मुख्य-मुख्य टाँगेवाले वहाँ उपस्थित थे। बहुत सोच-विचार कर लोगों ने यह निर्णय किया कि तारा को मुसलमान साबित करना बहुत मामूली बात हो गई है। हम सब लोग इस बात के गवाह है। एक टाँगेवाले ने इस बात का जिम्मा लिया कि वह एक ऐसा मौलवी भी तलाश कर देगा, जो कहेगा कि तारा ने उससे कलमा पढ़ा था। अनेक टाँगेवालों ने वादा किया कि वे लोग इस बात की गवाही देंगे कि सादिक से तारा का बाकायदा निकाह हुआ था।

मगर बेवकूफ़ पीरू इस तरह बैठा था, जैसे वह सूखे हाड़-मांस का, साँस लेता हुआ, एक बेजान पुतला हो। लोगों ने, जात-बिरादरी ने, क्या निर्णय किया है, यह सब जैसे उसके कानों के भीतर पहुंच ही न पा रहा था। वह न कुछ बोल ही रहा था और न कुछ सुन ही रहा था। अन्त मे नूरे ने पीरू से पूछा--"तुम्हे यह मंज़ूर है न ?"

पीरू कुछ भी नहीं समझा, मगर यन्त्रचालित पुतली के समान उसने इस प्रकार सिर हिला दिया, मानो उसे सभी कुछ स्वीकार है।

उसी रात पुलिस की देख-रेख में पीरू को दिल्ली ले जाया गया। उसकी बिरादरीवालों ने उससे पचासों बार ताकीद कर दी कि गवाहों में वह उन सब का नाम अवश्य लिखवा दे। सभी ने बार-बार कहा--"घबराने की कोई बात नहीं है!"

मगर बूढ़े पीरू के लिए जैसे यह सब बेमतलब का एक तमाशा था।

तीन ही दिन बाद पीरू दिल्ली से वापस आ गया। अब वह उतना गुमसुम भी प्रतीत नहीं होता था। मुहल्ले के लोगों ने समझा कि मामला शायद रफ़ा-दफ़ा हो गया है। बहुत-से लोगों ने पीरू को उसके घर के बाहर ही घेर लिया। नूरे ने उतावलेपन से पूछा--"कहो पीरबख्श, क्या हाल-चाल हैं?"

पीरू ने धीरे से कहा--"खुदा का फ़ज़ल है!"

नूरा ने पूछा--"सादिक कहाँ है?"

पीरू ने बिलकुल साधारण बात की तरह बताया--"जेल में।"

बीसों कण्ठ आश्चर्य मे भरकर इस बात को दोहरा उठे--"जेल मे!"

नूरे ने पूछा--"जेल में किस लिए?"

पीरू ने दृढ़ता से कहा--"उसने बदफ़ेल किया था, इसलिए।"

"मगर अदालत को यह किसने बतलाया कि उसने बदफ़ेल किया है?"

"मैंने।"

"तुमने?"

"हाँ, मैंने।"

"उसे कितनी सजा हुई?"

"पाँच बरस की कड़ी कैद।"

सभी लोग एक साथ चिल्ला उठे--"बेवकूफ है! गधा है! पाजी है! काफ़िर है! नालायक है! दिमाग़ फिर गया है! पागल हो गया है!...."

मगर अपने पड़ोसियों द्वारा प्राप्त होने वाली इन उपाधियों की ओर जरा भी ध्यान दिए बिना पीरू शीघ्रता से अपने घर के भीतर प्रविष्ट हो गया।

हिन्दू लोग पहले ही जानते थे कि 'पीरू टाँगेवाला' एक छँटा हुआ गुण्डा है। अब मुसलमानों को भी मालूम हो गया कि पीरू काफ़िर है, बेईमान है।

बुड्ढा पीरू दुनिया में फिर से बिलकुल अकेला रह गया है। मगर अब

उसका स्वास्थ्य भी उसका साथ नहीं दे रहा। जिस्म सूखी हुई हड्डियों का ढाँचा-भर ही रह गया है। रह-रहकर उसे खाँसी उठ खड़ी होती है और उसका दम उखड़ने लगता है। मगर अब भी, मानो भर्राई-हुई-सी आवाज मे लाहौर की सड़कों पर वह पुकारता फिरता है--"ज़िला कचहरी! अजाबघर! कृष्णनगर!"

पुलाव और सरदी !

डाक्टर सक्सेना पागलखाने के बड़े डाक्टर के कमरे के सामने पहुँच कर कुछ रुके ही थे कि चपरासी एक चिट और पैन्सिल उनके सामने ले आया। परन्तु उसकी नितान्त उपेक्षा कर डाक्टर सक्सेना चिक उठाकर एकाएक अपने पुराने मित्र के कमरे के भीतर पहुँच गए और बोले--"कहो, क्या हाल है मित्र रामपाल ?"

डाक्टर रामपाल सहसा चौंक कर खड़े हो गए। आश्चर्ययुक्त आनन्द के साथ उन्होंने कहा--"अरे यार, तुम हो सक्सेना ! इतने बरसों के बाद इस तरह बिना किसी पूर्व सूचना के तुम से कभी यों भेंट हो जाएगी, इसकी मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था।"

डाकटर सक्सेना ने हँसते-हँसते कहा--"बात यह है दोस्त कि पागल-खानों के डाक्टर आमतौर से खुद भी पागल बन जाते हैं। पूरे न सही तो आधे ही सही। तुम तो भाई, २७ बरसों से पागलखानों के 'बड़े' डाक्टर हो। सो मैं यह देखने आया था कि तुम्हारे पूरी तरह पागल बन जाने में अब कितनी कसर बाकी है ! और इस काम के लिए मैं पूर्व-सूचना किस तरह भेजता !"....डाक्टर सक्सेना की हँसी इतना अधिक बढ़ गई थी कि उनकी बात समझना भी कठिन बनता जा रहा था।

मगर डाक्टर रामपाल ने बड़ी गम्भीरता से इतना ही कहा--"मालूम है, इतना अचानक तुम्हें यहाँ देखकर मैं क्या समझा था ?"

"क्या ?"

"आज सुबह-सुबह यह कौन नया पागल यहाँ भरती होने के लिए

लाया गया है, जिसकी शक्ल और आवाज़ दोनों मेरे मित्र सक्सेना से इतना अधिक मिलती है।"

खूब खुल कर हँस लेने के बाद दोनों मनोवैज्ञानिक मित्र कामकाज की बातें करने लगे। डाक्टर सक्सेना देश के ख्यातिप्राप्त मनोवैज्ञानिकों में हैं और नए अनुसन्धान के लिए देश के बड़े-बड़े पागलखानों का दौरा कर रहे हैं। डाक्टर रामपाल उनके सहपाठी रहे हैं और दोनों की मित्रता बहुत पुरानी है।

डाक्टर रामपाल के कमरे के सामने मखमली घास से मढ़ा हुआ खुला सहन है, जिसके चारों ओर रंग-बिरंगे गुलाब महक रहे हैं। इस मैदान में दो आराम कुर्सियाँ डलवा कर दोनों मित्र जम कर बैठ गए। जनवरी का महीना था और आकाश भर में एक हल्की-सी धुंध छाई हुई थी। ११ बज जाने पर भी धूप में गरमी का नाम तक नहीं था। दूर पर पागलखाने का बड़ा फाटक था, जहाँ बीसों मानसिक बीमार सींकचों के पीछे से अपने रिश्तेदारों से मिल रहे थे। वहाँ हास्य तथा रुदन मिश्रित विविध स्वरों का जो ऊँचा कोलाहल हो रहा था, वह इन दोनों मनोवैज्ञानिकों के विचार-विनिमय के लिए जैसे बहुत ही उपयुक्त पृष्ठभूमि उपस्थित कर रहा था।

डाक्टर सक्सेना ने अपने दोस्त से पूछा--"कुछ पढ़ते-लिखते भी रहते हो मित्र?"

रामपाल ने कहा--"पढ़ने-लिखने की फ़ुरसत ही कहाँ मिलती है।"

डाक्टर सक्सेना ने रूस, अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रांस के जगत्-प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों की नई किताबों के सम्बन्ध में पूछा तो मालूम हुआ कि डाक्टर रामपल को उन नामों से परिचय तो ज़रूर है, मगर उन्होंने उनमें से किसी एक की भी कोई नई किताब नहीं पढ़ी। इस पर डाक्टर सक्सेना ने संसार के मनोविज्ञान सम्बधी प्रसिद्ध पत्रों के कतिपय महत्वपूर्ण लेखों का ज़िक्र किया। ये लेख डाक्टर रामपाल की निगाह से ज़रूर गुज़रे थे, परन्तु पढ़ने की फुरसत उन्हें इन लेखों के लिए भी न मिल पाई थी। डाक्टर सक्सेना ने कहा--"दोस्त, आख़िर तुम पूरी तरह एक मुफ़स्सिल

के आदमी ही बन कर रहे न ! याद है न, मैं कहा करता था कि रामपाल 'जीनियस' तो जरूर है, मगर है बस एक कुएं का मेंडक ही !"

सक्सेना की इस बार की हँसी में रामपाल ने दिल खोल कर सहयोग दिया और जैसे सफ़ाई के तौर पर कहा--"गीता में लिखा है न कि चारों तरफ़ मीलों तक मधुर, स्वच्छ और शीतल पानी भरा रहने पर भी एक समझदार मनुष्य के लिए उतना ही पानी काम का है, जितना पानी वह पी सकता है ! सो भाई सक्सेना, मै भगवान कृष्ण के इसी सिद्धान्त का कायल हूँ।"

डाक्टर सक्सेना ने गम्भीर होकर कहा--"देखो रामपाल, अब तुम बूढ़े होने पर आ गए। नहीं तो मै तुम से कहता कि चाहे जिस 'विज्ञान' पर अपनी कृपा दृष्टि फेरो, इस बेचारे 'मनोविज्ञान' को छोड़ दो !"

"मनोविज्ञान इतना बेचारा कब से बन गया ?"

"जब से तुम्हारे जैसे उपासक उसे मिले। ख़ैर, मज़ाक की बात छोड़ो। यदि कहीं आज मै फिर से अपने जीवन का प्रारम्भ कर सकू, तो मै मनोविज्ञान की अपेक्षा जीव-विज्ञान को अपना विषय चुनूँगा।"

डाक्टर रामपाल भी अब सचमुच गम्भीर हो गए और उन्होंने उत्सुकता से पूछा--"वह क्यों ?"

"वह इसलिए कि जिन तत्वों को हम 'मनोजगत' के स्तर का मानते है, वे तत्व भी बाद मे भौतिक जगत के तत्व सिद्ध हो जाते है। सच बात तो यह है कि मनुष्य के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अभी तक हमारी जानकारी इतनी कम है, जितनी कि प्रागैतिहासिक काल में भौतिक विज्ञान के सम्बन्ध में थी; जब मनुष्य आग को संसार का सब से बड़ा चमत्कार समझा करता था।"

"पर इस परिस्थिति से हम निराश क्यों हों, सक्सेना ?"

"इसलिए कि मनोविज्ञान को साधक भी मिले है तो तुम्हारे जैसे !"

"यह लैक्चरबाज़ी छोड़ो सक्सेना। यह बताओ कि मनुष्य के 'आध्यात्मिक व्यक्तित्व' से तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

"मनुष्य के भौतिक शरीर के अतिरिक्त उसका जो कुछ भी अस्तित्व है; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार--यहाँ तक कि आत्मा भी; उस सब को मैं मनुष्य का आध्यात्मिक व्यक्तित्व कह रहा हूँ। मगर मुश्किल तो यह है कि उन सब में से कोई भी तो पकड़ में नहीं आता ! जो पकड़ में आता है, वह सब का सब, देर या सबेर, उसी तरह भौतिक सिद्ध हो जाता है, जिस तरह मैलंकोलिया स्नायवीय श्रेणी की एक बीमारी सिद्ध हो गई।"

मगर डाक्टर रामपाल जैसे अब सक्सेना की बात ही न सुन रहे थे। डाक्टर सक्सेना की चाल कारगर हो गई थी और वह अपनी पैनी बातों से रामपाल को ठीक मूड में ले आया था।

दो-चार क्षण दोनों मित्र चुपचाप बैठे रहे। इस चुप्पी को पागलख़ाने के दरवाज़े से आने वाला हास्य मिश्रित आर्तनाद और भी अधिक तीव्र बना रहा था। उसके बाद डाक्टर रामपाल ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया--"मनुष्य के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की चिन्ता मुझे नहीं है सक्सेना ! वह तो एक लम्बी साधना का क्षेत्र है। मुझे तो कभी-कभी यह देख कर बहुत बड़ा विस्मय होता है कि एक ही मनुष्य के भीतर समान शक्ति के दो परस्पर विरोधी व्यक्तित्व किस प्रकार छिपे रहते हैं !"

डाक्टर सक्सेना ने बड़ी उत्सुकता से कहा--"केस हिस्ट्री रामपाल ! केस हिस्ट्री !"

"अच्छा, तो केस हिस्ट्री ही सुनो।"

:o: :o: :o: :o:

"लगभग ५ बरस हुए एक दिन की प्रातःकाल एक नए पागल को मेरे सामने लाया गया था। एक अच्छा भला नौजवान 'पुलाव गरमागरम ! मटर-पुलाव गरमागरम !' की पुकार लगाते-लगाते मेरी तरफ़ आ रहा था और उसके साथ ग़मगीन-सी शक्ल में दो-चार स्त्री-पुरुष थे। वह नौजवान कुछ ऐसे अन्दाज़ से 'गरम पुलाव !' की पुकार लगाता था कि यह समझना तो कुछ कठिन था कि वह 'मटर पुलाव' कह रहा है या 'मटन पुलाव'; मगर

मिनट भर में सम्पूर्ण पागलखाने का ध्यान उस नौजवान ने अपनी ओर ज़रूर खींच लिया।

"मालूम हुआ कि उस नौजवान का नाम प्यारेलाल है, उम्र २७ वर्ष, शरीर और ढाँचा मध्यम। निम्न-मध्यश्रेणी का यह युवक किसी दफ्तर में क्लार्क था। उसकी पत्नी उसकी अपेक्षा कहीं अधिक रोबीली थी और घर में उसी का हुक्म चलता था। प्यारेलाल को पुलाव बहुत पसन्द थे और अपनी पत्नी से वह सदा पुलाव बनाने की माँग किया करता था। उसकी पत्नी का कहना था कि अच्छा चावल अब बहुत महंगा है और पुलाव बनाने से घी को पानी की तरह बहाना पड़ता है। नतीजा यह था कि प्यारेलाल को पुलाव नसीब नहीं होते थे।

"उस प्रभात से एक दिन पहले भी प्यारेलाल सदा की तरह सुबह का भोजन कर दफ्तर चला गया था। दफ्तर से वह सदा साँझ के ६ बजे घर वापस आया करता था। पर उस रोज उसके दफ्तर में एकाएक छुट्टी हो गई और वह दोपहर के डेढ़ बजे ही घर वापस आ पहुँचा। उसका ख्याल था कि उसकी पत्नी या तो कहीं पड़ोस में गई हुई होगी या सो रही होगी। पर यह देख कर प्यारेलाल के आश्चर्य की सीमा न रही कि उसका घर स्वादिष्ट पुलाव की सोंधी-सोंधी सुगन्ध से महक रहा है और घर के आँगन में उसकी पत्नी और उसके तीन साले एक साथ भोजन कर रहे हैं। चारों के सामने के थाल गरमा-गरम पुलाव से भरे हुए हैं और साथ ही खाली देगची पड़ी है। यह कल्पनातीत दृश्य देख कर प्यारेलाल ने जो हँसना शुरू किया, तो वह हँसता ही चला गया। जब तक प्यारेलाल की हँसी रुकी, तब तक वह पत्नीभीत हीन-मध्यश्रेणी के एक क्लर्क से ऊँची आवाज़ में गरमागरम पुलाव बेचने वाला एक पागल बन चुका था।

"पहले ही दिन से प्यारेलाल पागलखाने की इस बस्ती में 'पुलाव वाला' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। मैंने उसका अध्ययन किया। एकदम साधारण कोटि का व्यक्तित्व था इस व्यक्ति का। अपनी पत्नी से वह जितना डरता था, उतना ही उसका अन्तर्मन उससे घृणा करता था। प्यारेलाल

को पहले भी सन्देह था कि उसकी पत्नी उसकी कमाई पर अपने रिश्तेदारों को पालती है, पुलाव वाली घटना से वह सन्देह गहरे विश्वास के रूप में बदल गया।

"यों प्यारेलाल के व्यक्तित्व मे अब भी किसी तरह की तीव्रता समाविष्ट नहीं हुई थी। वह हर समय हँसता रहता और गरमागरम पुलाव के नारे लगाता रहता। केवल अपनी पत्नी का नाम सुनते ही वह गम्भीर हो जाता था। शुरू-शुरू मे मैंने उसकी पत्नी को उससे मिलने नहीं दिया, क्योंकि वह स्वयं उससे मिलने को राजी ही न होता था। बाद मे वह उससे मिलने को तैयार हो गया, पर जब उसकी पत्नी उससे मिलने आई, तो वह उस पर बुरी तरह गरजा। दो-एक सिपाहियों की सुरक्षा मे मेरी सलाह मान कर वह औरत चुपचाप अपने पति की गरज सुनती रही।

"प्यारेलाल का इलाज करने में तो मुझे अधिक समय नहीं लगा, परन्तु उसे फिर से पत्नी के साथ घर बना कर रहने को तैयार करने मे मुझे पूरे तीन साल लग गए। तीन साल के बाद यह जानकर मुझे सन्तोष हुआ कि प्यारेलाल अपनी पत्नी के साथ एक साधारण गृहस्थ का सा जीवन बिता रहा है। प्यारेलाल की नौकरी तो जाती रही थी, इससे घर पर ही उसने नून, तेल, लकड़ी की एक छोटी-सी दूकान खोल ली थी। इस दूकान के चलाने में उसकी पत्नी भी उसे भरसक सहायता दे रही थी। दोनों तंगी में थे, पर जिस किसी तरह उनका जीवन निर्वाह हो ही रहा था।"

इतना कहकर डाक्टर रामपाल चुप हो गए। डाक्टर सक्सेना भी चुपचाप बैठे अपने मित्र की ओर देखते रहे। दो मिनट की चुप्पी के बाद डाक्टर रामपाल ने फिर कहना शुरू किया--

"आज से सिर्फ़ २५ दिन पहले की बात है। उस दिन भी सर्दी बहुत अधिक थी। रात भर पानी बरसता रहा था और सूर्योदय से पहले आकाश एकाएक स्वच्छ हो गया था। उस कड़ाके की सर्दी मे रज़ाई छोड़ कर बाहर निकलने को जी न करता था कि एकाएक अपने मकान के सहन से किसी व्यक्ति के जोर-जोर से रोने का अत्यन्त करुण स्वर मुझे

सुनाई दिया। यह हस्पताल है, मानसिक रोगों का ही सही। यहाँ मृत्यु का परिचय तो सम्पूर्ण बस्ती को है। पर उस रोदन में कुछ ऐसी द्रावकता थी कि जो सुनने वाले को पसीज कर ही रहे।

"शीघ्रता से लबादा ओढ़ कर मैं सहन के बरामदे में निकल आया, तो देखा--वही पुलाव वाला प्यारेलाल! साथ के लोगों ने बताया कि वह कल साँझ से रो रहा है। उस समय से, जबकि उसकी पत्नी की चिता को लगाई आग एकाएक भड़क उठी थी। तब से अब तक वह लगातार इसी तरह ज़ार-ज़ार रो रहा है। थक कर बीच में कुछ देर के लिए सो ज़रूर गया था। पर जागृत दशा में क्षण भर के लिए भी वह चुप नहीं हुआ। यह तो पूरी तरह स्पष्ट था कि प्यारेलाल फिर से पागल बन गया है।

"प्यारेलाल की इस बार की कहानी सचमुच बहुत करुण थी। जाँच-पड़ताल से मालूम हुआ कि वह बड़ी गरीबी से अपना जीवन निर्वाह कर रहा था। पर उसके आचरण से किसी को कोई शिकायत नहीं थी। अब वह पहले की अपेक्षा भी अधिक शान्त और अधिक भलामानस माना जाता था। उसकी पत्नी का स्वभाव भी बदल गया था। प्यारेलाल की बीमारी के दिनों में उसके भाई-बन्दों ने उसका साथ नहीं दिया था। इस लम्बी कष्ट परीक्षा में वह बेचारी प्यारेलाल से भी अधिक कमज़ोर हो गई थी। प्यारेलाल को तो फिर भी पागलख़ाने में अच्छा ख़ासा भोजन मिलता रहा था, पर उसकी पत्नी लगातार बहुत तंगी और अभाव में रही थी।

"नवम्बर के अन्त में प्यारेलाल की पत्नी एक बच्चे की माँ बनी। माँ और बच्चा दोनों बहुत कमज़ोर थे। प्यारेलाल में अपनी पत्नी को पूरा भोजन देने की भी सामर्थ्य नहीं थी, वह उसका इलाज कहाँ से करवाता। उसकी पत्नी अपने नवजात शिशु को यथेष्ट दूध भी न दे पाई। सप्ताह भर के भीतर ही शिशु का देहान्त हो गया।

"अपने भीतर की कमज़ोरी और बीमारी, अपर्याप्त भोजन और उस पर सन्तान वियोग की जलन! प्यारेलाल की पत्नी की दशा बहुत

दयनीय हो गई। गरीब प्यारेलाल से जो कुछ बन पड़ता, वह करता। मगर सच बात तो यह है कि आज की दुनिया में जो कुछ करता है, वह रुपया करता है। इन्सान कुछ नहीं करता। इससे प्यारेलाल चाहते हुए भी कुछ न कर सकता था।

"फिर इस साल सरदी भी तो बहुत पड़ रही है सक्सेना ! यह सरदी एक तो गरीबी में सताती है, दूसरे बीमारी में। और प्यारेलाल की पत्नी गरीब और बीमार दोनों ही थी। घर की पुरानी चटाई, चीथड़ेनुमा कम्बल, लोग्गड़नुमा रज़ाई, सब उसने अपनी घरवाली को दे दिए। फिर भी वह बेचारी सरदी से दाँत बजाती रहती थी। जब कभी प्यारेलाल उसका हाल पूछता, वह बड़ी करुणा से कहती--'सरदी ! सरदी !! मुझे सरदी लग रही है !'

"और २३ दिसम्बर की प्रातःकाल, जिस दिन सूर्य उत्तरायण होना आरम्भ करता है, जिस दिन भीष्म पितामह ने स्वेच्छापूर्वक पुराने चीथड़ों के समान अपने शरीर का विसर्जन किया था, उसी दिन शायद कड़कड़ाते जाड़े के कारण ही प्यारेलाल की पत्नी का देहान्त हो गया। वह बेचारी सरदी से इतना सिकुड़ गई थी कि उसकी देह को सीधा भी नहीं किया जा सका। उस दिन सरदी और भी अधिक थी और बीच-बीच में बूँदाबांदी भी हो रही थी। गिने-चुने पाँच-सात पड़ोसी उसकी देह को श्मशान में ले गए।

"पत्नी के देहान्त के बाद भी सभी आवश्यक कार्य प्यारेलाल पूरे होश-हवास में करता रहा था। पत्नी के शव को उसी ने नहलाया, उसी ने उसके कपड़े बदले और उस ही ने सधवा की माँग में सिन्दूर भरा। लोगों के मना करने पर भी सारी राह प्यारेलाल अपनी पत्नी की अन्तिम यात्रा में लगातार कन्धा दिए रहा। चिता को अग्नि भी उसी ने दी।

"पर चिता जलने के साथ-ही-साथ प्यारेलाल अपना मानसिक समतुलन एकाएक खो बैठा। बात यह हुई कि प्यारेलाल ने ज्यों ही चिता को आग दी, चिता का फँस तीव्रता से सुलग उठा। इस जलते फूँस में से प्यारेलाल की

पत्नी का शरीर स्पष्टतः दिखाई दे रहा था। आग की गरमी और दोनों ओर की लकड़ियों के बोझ से शव में एकाएक गति दिखाई दी, जैसे प्यारेलाल की पत्नी सरदी की जकड़ से छुटकारा पाकर मजे मे अपने पाँव पसार रही हो! प्यारेलाल पास ही खड़ा था। उसका कहना था कि उसने खुद अपनी आँखों से अपनी पत्नी को मुस्कराते हुए देखा है, खुद अपने कानों से उसकी पुकार सुनी है!

"यह सब काम एक क्षण मे हुआ और एकाएक प्यारेलाल चीख उठा 'बचाओ! बचाओ! मेरी घरवाली को बचाओ! वह सरदी से बचना चाहती थी, आग से जलना नहीं!' प्यारेलाल चीखा चिल्लाया, चिता की आग बुझाने वह आगे भी बढ़ा, मगर साथ के लोगों ने उसे कुछ भी न करने दिया। देखते ही देखते चिता धधक कर जलने लगी और उधर प्यारेलाल जोर-ज़ोर से रोने लगा। उसकी आँखों से देखी मुस्कराहट और कानों से सुनी पुकार पर किसी ने विश्वास ही नहीं किया।

"बड़ी कठिनाई से मैं प्यारेलाल को चुप करा पाया। परन्तु आज भी उसका पूर्ण विश्वास है कि सरदी की लम्बी जकड़ से छुटकारा पाकर चिता मे उसकी पत्नी ने अंगड़ाई ज़रूर ली थी, होश मे आकर वह स्पष्टतः मुस्कराई थी और साफ़ आवाज मे उसने प्यारेलाल को पुकारा भी था। अब प्यारेलाल अधिक नहीं बोलता, फिर भी कभी करुणापूर्ण स्वर मे एकाएक चिल्ला उठता है 'सरदी! सरदी!!' जैसे, वह कोई दुःस्वप्न देख रहा हो।

"सब से अजीब बात यह है कि पुलाव सम्बन्धी एक भी बात अब उसे याद नही है। उसे तो यह भी समझ नहीं आता कि लोग उसे 'पुलाव वाला' कहकर क्यों बुलाते है?"

रेलगाड़ी में

दिन को रेल का सफ़र करने से मैं सदैव बचने का प्रयत्न करता हूँ। मगर बादलों वाले दिन मेरी इच्छा होती है कि रेल के डिब्बे की पूरी खिड़कियाँ खोल कर मैं एक जगह से दूसरी जगह पर उड़ा फिरूँ। सरदी हो या गरमी, बादलों का आना मुझे सदैव पसन्द है। ऐसे दिन मुझे यही अनुभव होता है, जैसे धरती के इस खुले आँगन में कोई उत्सव करने के लिए भगवान ने बादलों का शामियाना तान दिया हो। यहाँ तक कि रेगिस्तान पर भी जब बादलों का यह सुहावना चंदुआ तन जाता है, तो वहाँ शान्ति और मधुरता छा जाती है।

एक ऐसे ही दिन मैं एक ऐसी सुस्त पैसेंजर गाड़ी में सफर कर रहा था, जो हरएक स्टेशन पर दिल खोल कर आराम किया करती है। मैं अपने डिब्बे की सब खिड़कियाँ खोल कर बाहर की तरफ़ देख रहा था। सरदियों का मौसम था। रेलवे लाइन के दोनों तरफ़ मीलों तक फैले हुए खेतों में गेहूँ की नई-नई कोंपलें चुपचाप सन्नाटा थाम कर आसमान से पानी का इन्तज़ार कर रही थीं। दूर पर, जगह-जगह दिखाई देने वाले घने-घने आम्रकुंजों में अत्यधिक स्निग्ध श्यामलता दृष्टिगोचर हो रही थी। बादलों की घनी छाया में ये आम्रकुंज ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे मुद्दत तक सूरज के खुले प्रकाश में सफ़र कर लेने के बाद आज वे अपने घर में बैठे हुए विश्राम कर रहे हों।

थोड़ी सी देर में वर्षा का एक झोंका आया। ठण्ड बढ़ गई। अपना चेस्टर टाँगों पर डाल कर मैं खिड़की की राह बाहर देखने लगा--वर्षा

की फुआर के साथ-साथ सफेद कोहरे की उत्पत्ति हो रही है। सब ओर बिलकुल सन्नाटा है। कहीं कोई प्राणी दिखाई नहीं देता। केवल कहीं-कहीं, घने आम्रकुंजों की छाया मे, सरदी के कारण एक-दूसरे के अत्यधिक निकट होकर खड़े हुए गाय-बैल दिखाई दे जाते हैं। जहाँ तक नज़र जाती है, आसमान से गीलापन, शीतलता, स्निग्धता और सन्नाटा मूर्तिमान होकर बरसता-सा दिखाई दे रहा है। इस वातावरण मे अपने निश्चित मार्ग पर शीघ्रता से भागी जा रही रेलगाड़ी के कल पुर्ज़ों की घिसघिसाहट भी संगीत के समान मधुर प्रतीत होती है।

घण्टों बीत गए, और माँ प्रकृति ने अपना यह दिव्य रूप नहीं बदला। मेरे डिब्बे में कोई यात्री नहीं आया। क्रमशः गाड़ी मेरठ छावनी स्टेशन पर पहुँची। यहाँ कितने ही लोग तीसरे दर्जे के इस डिब्बे में सवार हो गए। एक महिला भी इसी डिब्बे मे सवार हुई। शक्ल-सूरत और पहनावे से यह औरत खानसामा जमात की प्रतीत होती थी। उसकी उम्र चालीस बरस से छोटी न होगी। उसके साँवले चेहरे पर इतनी असाधारण गम्भीरता थी कि मेरा ध्यान अनायास ही उसकी ओर आकृष्ट हो गया। कुली ने उस औरत का सामान यथास्थान रख दिया और कुली को पैसे देकर वह खिड़की की राह गाड़ी में से अपना मुँह बाहर निकाल कर प्लेटफार्म की तरफ़ देखने लगी। उसकी दृष्टि में कुछ ऐसी व्यग्रता थी कि कौतूहलवश मैं अपनी जगह पर ही बैठा रह गया। समय अपनी साधारण गति से बीत रहा था, मगर शायद उस महिला के लिए तब एक-एक क्षण की भी बहुत कीमत थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था, उसके हृदय की व्यग्रता बढ़ती जाती थी और क्रमशः उसके चेहरे पर उदासी और निराशा के भाव आते जा रहे थे। एंजिन पानी लेने के लिए गाड़ी से कट कर थोड़ी दूर पर गया हुआ था। क्रमशः वह लौटा और गाड़ी से संयुक्त हो गया। उसका हल्का-सा धक्का हम लोगों को स्पष्ट रूप में अनुभव हुआ। इस डिब्बे से एंजिन बहुत दूर नहीं था। पानी पीकर जैसे उसमे नवजीवन का संचार हो आया था। उसकी हिस्-स्-स्-स् की अवाज़ बढ़ गई थी, मानो अब वह भाग चलने

के लिए व्याकुल हो रहा हो। शीघ्र ही एंजिन ने एक सीटी दी। वह नारी बिलकुल निराश हो गई, उसने हठात् एक गहरा श्वास लिया। परन्तु अगले ही क्षण उसका चेहरा एकाएक खिल उठा। आँखों में प्रसन्नता छा गई और अपना हाथ बाहर निकाल कर, वह इस तरह से, जैसे स्टेशन भर के अन्य सब लोग निर्जीव हों और उसकी इन असाधारण हरकतों को देख ही न रहे हों, दूर पर के किसी व्यक्ति को अपनी तरफ़ आने के लिए इशारे करने लगी। मेरा ध्यान तो शुरू ही से इसी महिला की तरफ़ था। अब उसके चेहरे का यह भावपरिवर्तन देखकर मैंने बाहर की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। देखा, स्टेशन की सीमा के बाहर सैनिक अफसरों की पोशाक पहने हुए एक नवयुवक घोड़े से उतरा है, और वह स्टेशन के प्लेटफार्म के एक सिरे से शीघ्रतापूर्वक इसी तरफ बढ़ा चला आ रहा है।

एंजिन ने अभी दूसरी सीटी नहीं दी थी कि वह युवक उक्त महिला के पास आ खड़ा हुआ। वह महिला कूद कर गाड़ी से नीचे उतर गई। युवक सैनिक ने इस महिला को सिर झुका कर नमस्कार किया और महिला ने बड़े प्यार से उसके मस्तक का एक चुम्बन लिया।

कुछ क्षणों तक वह महिला अपना एक हाथ उस युवक के सिर पर रख कर और दूसरे हाथ में उसका बायाँ हाथ थाम कर चुपचाप खड़ी रही। वह इतने भावावेश में थी कि उसके लिए कुछ बोल सकना सम्भव ही नहीं था। इसके बाद उसने बड़े प्रयत्नपूर्वक कहा--"मैं दो घंटों से तुम्हारी इन्तज़ार में थी। तुम पहले क्यों नहीं आए ?"

वह नवयुवक विस्तारपूर्वक अपनी देरी का कारण बताने ही वाला था कि एंजिन ने दूसरी सीटी दी। महिला ने इस नवयुवक को खींच कर अपनी छाती से लगा लिया।

इसके बाद उन दोनों में बहुत धीरे-धीरे क्या बातचीत हुई, इसे मैं नहीं सुन सका। उनके पास समय भी तो बहुत थोड़ा था। अगले ही क्षण गार्ड ने सीटी दी। एंजिन ने इस बार जो सीटी दी, वह महज धमकी नहीं थी--वह सचमुच चल देने की इच्छा से दी गई थी। खानसामा की

मदद से वह महिला गाड़ी में सवार हो गई। गाड़ी चल दी। जब तक गाड़ी की चाल धीमी रही, वह युवक भी साथ-साथ ही चलता रहा। जब गाड़ी की रफ्तार तेज हो गई, तो वह एक स्थान पर खड़ा होकर इस महिला को तरफ़ देखने लगा। यह महिला खिड़की में से अपना मुँह बाहर निकाल कर उस युवक को लक्ष्य किए रूमाल हिलाती रही। क्रमशः एक क्षण आया, जब वे दोनों एक-दूसरे से ओझल हो गए।

उस महिला की आँखों में आँसू भर आए। उसने एक गहरा श्वास लिया और वह एक तरफ़ को होकर बैठ गई। अपना रूमाल अब उसने आँखों पर रख लिया था। उसके रोने का वेग बढ़ गया। अपने रोने के वेग को अन्दर-ही-अन्दर दबा देने के लिए वह जो प्रयत्न करती थी, उसकी आवाज अब मुझे साफ़-साफ़ सुनाई दे रही थी। इस डिब्बे में एक किसान नारी भी बैठी थी, जो सम्भवतः बड़े नरम दिल की थी। वह उठी, और परदा कर इस शोकसन्तप्त बड़ी उम्र की महिला को बहन के समान आश्वासन देने लगी। क्रमशः उसके रोने का वेग शान्त हो गया। शीघ्र ही दोनों स्त्रियों में बातचीत होने लगी और इस बातचीत का प्रवाह धीरे-धीरे इस तरह खुल गया, जैसे वेगवती पानी की धारा राह की मिट्टी को काट कर अपने लिए खुला मार्ग बना लेती है।

मेरी निगाह अब भी खिड़की की राह से बाहर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर थी, मगर मैं देख कुछ भी नहीं रहा था। मैं सुन रहा था, सुन क्या रहा था, सुनने का प्रयत्न कर रहा था कि उन दोनों स्त्रियों में क्या बातचीत हो रही है। मगर बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं कुछ न जान सका कि उन दोनों में क्या बात हो रही है। क्रमशः अपने अनजाने में ही किसी नई-सी दुनिया में जा पहुँचा।

:o: :o: :o:

एक लड़की थी। उसका नाम सुक्खो था। उसका जन्म एक मछिहारे के घर हुआ था। यमुना नदी के किनारे, आबादी से अलग, उसके बाप की एक जरा-सी झोंपड़ी थी। बाप दिन भर मछलियाँ फँसाया करता था।

वह गरीब आदमी था, इसलिए बिलकुल घटिया दर्जे के जाल ही वह इस्ते-माल में ला सकता था। जमुना के बड़े-बड़े कछुए उसके सब से भयंकर शत्रु थे। जब कोई बड़ी मछली उसके जाल में फँसती, तो झट से कोई-न-कोई कछुआ वहाँ आ पहुँचता। वह न केवल उस फँसी हुई मछली को ही ले भागता, अपितु उस गरीब के जाल को भी जगह-जगह से छेद डालता। नतीजा यह होता कि वह बेचारा दिनभर मे बहुत थोड़ी मछलियों का शिकार ही कर पाता। वह बिलकुल गरीब था। उस का जीवन-निर्वाह भी बड़ी कठिनता से हो रहा था। उस पर भी सुक्खी की एक बहन थी, और उससे भी बड़ा एक भाई। माँ दिनभर चरखा कातती, जालों की मरम्मत करती और घर के अन्य काम-काज भी निबटाती। तीनों बच्चे जंगल से लकड़ियाँ जमा कर लाते और उथले जल में छोटी-छोटी मछलियों को पकड़ने का प्रयत्न किया करते थे। उनके तन पर ९ इंच चौड़े चिथड़े को छोड़ कर कोई कपड़ा नहीं था। सुक्खी का बाप सांझ के समय अपनी दिनभर की मेहनत को सिर पर लाद कर तीन मील दूर के एक बड़े कस्बे में जाता और बहुत सस्ते दामों पर अपना शिकार बेच कर वापस लौट आता था।

मछिहारे की झोंपड़ी के सामने एक बहुत वीरान-सा जंगल था। जंगल क्या था, कटी-फटी बंजर-सी भूमि पर छोटे-छोटे पेड़ उग आए थे। इस जंगल में गाँव के चरवाहे जानवरों को चराने के लिए आया करते थे। सुक्खी की दुनिया इन चरवाहों तक ही सीमित थी। तीन मील दूर के उस बड़े कस्बे के बाद इस पृथ्वी पर क्या है? कुछ है भी या नहीं? इस सम्बन्ध में सुक्खी और उसके भाई-बहन कुछ भी नहीं जानते थे। उन्हें जानने की इच्छा भी नहीं थी। उनकी सबसे बड़ी मिठाई बाजरे की गुड़ मिली रोटी थी। गुड़ से भी अच्छा दुनिया में कोई भोज्य पदार्थ हो सकता है, इस परिवार के सभी बालकों के लिए यह बात कल्पना से भी परे थी। जंगल के कसैले बेरों और खट्टे-मीठे जामुनों के अलावा एक ही और फल का नाम उन्हें ज्ञात था। मगर उनकी दृष्टि में यह देव-दुर्लभ फल, उन्हें साल

भर मे केवल पाँच-सात बार ही खाने को मिलता था। जब उनका बाप बरसात की मौसम में, कभी-कभी गाँव से लौटते हुए दो-चार पैसों के चालीस-पचास गले-सड़े और छोटे-छोटे आम उठा लाया करता था। जिस दिन उनके घर यह चीज़ आती, उस दिन वहाँ नवजीवन का संचार हो जाता था। बच्चों के चेहरों पर एक विशेष तरह की प्रसन्नता और उत्साह दिखाई देने लगता था। सुक्खी के बचपन के दिन इसी प्रकार की परिस्थितियों में व्यतीत हुए थे।

क्रमशः दिनों के महीने बनते गए और महीनों के साल। ये साल भी कई निकल गए। धीरे-धीरे सुक्खी का बड़ा भाई भी अपने बाप की तरह बाकायदा मछिहारे का काम करने लगा, और उसकी बड़ी बहन का विवाह हो गया। मछिहारा अपनी इस बड़ी लड़की की खुशकिस्मती पर फूला न समाता था। वह सोचता--सारी बात किस्मत की है। जब किसी की किस्मत चमकती है, तो उसकाभला होकर ही रहता है। तभी तो ! हाँ, तभी तो मुझ बेचारे मछिहारे की गरीब-सी लड़की का विवाह एक धोबी से हो गया है। सुक्खी के जीजा जी सचमुच के एक धोबी थे। इस धोबी की उम्र २८ साल से कम नहीं होगी ; काम-काज की दृष्टि से यह धोबी बिलकुल निकम्मा नहीं था, परन्तु अपनी जात-बिरादरी में कोई झगड़ा हो जाने के कारण कोई व्यक्ति उसे अपनी लड़की देने को तैयार नहीं होता था। इसी कारण अब तक उसका विवाह नहीं हो पाया था। गरीब मछिहारे के घर जब धोबियों की बरात आई, तो सुक्खी और उसके भाई बहन उनके वैभव को देखकर दंग रह गए। वैसे बरात कोई बड़ी नहीं थी, सिर्फ उस धोबी के कुछ निकट सम्बन्धी ही इस बरात में शामिल हुए थे। इन धोबियों ने नील चढ़े जो उजले वस्त्र पहने हुए थे, उन्हे देख कर यह मछिहारा-परिवार इतना आश्चर्य चकित हो रहा था कि उन्हें यह भी समझ नहीं आता था कि बरातियों की ये पोशाकें कपड़े की बनी हुई हैं या और किसी चीज़ की।

मगर उस अभागे मछिहारे को यह खुशी देखना बहुत देर तक नसीब

नहीं हुआ। इस विवाह के केवल दो मास बाद ही नवम्बर महीने की एक सायंकाल जब वह गाँव से वापस लौट कर घर पहुँचा तो उसे सरदी अनुभव होने लगी। वह बिना कुछ खाए-पीए अपने बिस्तर पर जाकर लेट गया। उसकी सारी रात बड़ी बेचैनी से कटी। जब प्रातःकाल हुआ, तो उसकी तकलीफ बहुत बढ़ गई। तेज़ बुखार के साथ-साथ उसे बड़ी बेचैनी अनुभव होने लगी। दिन भर वह चारपाई पर पड़े-पड़े कराहता रहा। सुक्खी की माँ किसी बीमारी के सम्बन्ध में तो कुछ जानती ही न थी, वह अपने पति को किसी जंगली वनस्पति का गरम-गरम काढ़ा ही पिलाती रही। सांझ तक उस बेचारे को छाती मे भी दर्द अनुभव होने लगा। सारी रात जागते गुजरी। सुक्खी की बड़ी बहन अपने पति के घर थी। दूसरे दिन सुक्खी का बड़ा भाई अपने बहनोई और बहन को लेने के लिए गाँव चला गया, परन्तु उसके लौटने से पहले ही अभागे मछिहारे का देहान्त हो चुका था।

सुक्खी और उसकी माँ पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। इस अवसर पर उसके जीजा जी सचमुच काम आए। वह धोबी सुक्खी और उसकी माँ को अपने घर ले गया और वहाँ उसने उन्हे करीब एक मास तक काफ़ी सुख से रक्खा। इसके बाद वे दोनों अपनी झोंपड़ी में लौट आए और सुक्खी का भाई मछिहारे का काम कर अपनी माँ और बहन का पालन करने लगा।

अभागे मछिहारे की अनाथ लड़की सुक्खी को इस दस वर्ष की उम्र में ही एक तरह से अपनी आजीविका स्वयं कमानी पड़ती है। वह प्रतिदिन जंगल से सूखी लकड़ियाँ बटोर कर लाती है। सायंकाल के समय जब उसका भाई मछलियाँ बेचने के लिए गाँव में जाता है तो सुक्खी की बटोरी हुई लकड़ियों का गठ्ठा भी अपने सिर पर लाद ले जाता है। सुक्खी का भाई एक तो वैसे ही चतुर मछिहारा नहीं, इस पर उसके जालों की दशा और भी अधिक बिगड़ गई है, इसलिए सुक्खी की यह मेहनत इस गरीब परिवार के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

:o: :o: :o:

एक दिन की बात है। सुक्खी दोपहर के समय जंगल में से लकड़ियाँ

तोड़ रही थी। गरमियों के दिन थे। जमुना का पानी बिलकुल उतरा हुआ था। दोपहर का समय था। काफ़ी गरमी पड़ रही थी। नदी के किनारे घनी छाया वाले जामुन के अनेक वृक्ष थे। इन वृक्षों पर, छोटी-छोटी अधपकी जामुनें लदी हुई थीं। इनके नीचे किसी चरवाहे के जानवर आराम कर रहे थे।

चारों ओर सन्नाटा था। हवा बहुत ही धीमी चाल से बह रही थी। जामुनों के नीचे बैठी हुई अधिकांश गौएँ मस्त होकर, आँखें बन्द किए जुगाली कर रही थीं। भैंसें नदी के उथले पानी में बैठी थीं। उनके गले की घण्टियाँ हिल-हिल कर बीच-बीच में इस सन्नाटे को भंग करने का विफल प्रयत्न करती थीं। दूर पर, तीन-चार चरवाहे लड़के मिल कर कोई गीत गा रहे थे, जिसकी अस्पष्ट-सी आवाज सुक्खी के कानों में पड़ रही थी। लकड़ियाँ जमा करते-करते सुक्खी थक गई। उसके जी में आया कि चलकर वह जामुनों की छाया मे कुछ देर तक आराम करे। इस समय तक लकड़ियों का करीब आधा गट्ठा ही जमा हो पाया था। सुक्खी ने इस गट्ठर को बाँधा और वह नदी-तट पर लगे इन जामुनों के नीचे पहुँच गई। उसने अपनी लकड़ियाँ एक तरफ़ को रख दीं और बड़ी ललचाई दृष्टि से इन अधपके जामुनों की तरफ़ देखने लगी। उसे दिखाई दिया कि जामुन कुछ-कुछ पक गए हैं। उसके जी में आया कि इन्हें तोड़ कर खाऊँ। मगर पेड़ों के तने सीधे और लम्बे थे। सुक्खी के लिए उन पर चढ़ सकना असम्भव था। अनेक वृक्षों की शाखाएँ फलों के बोझ से नीचे की तरफ़ झुक गई थीं, मगर इस तरह की अधिकांश शाखाएँ पानी के ऊपर ही थीं। बेचारी सुक्खी कुछ देर तक बड़े सकाम भाव से इन जामुनों की तरफ़ देखती रही। इसके बाद उसने एक पत्थर उठा लिया और उसे वृक्ष की घनी डालों पर ज़ोर के साथ मारा। पत्थर की चोट से चार-पाँच जामुनें नीचे गिरीं, मगर इनमें अधिकांश कच्ची ही थीं। सुक्खी ने वही पत्थर उठा कर, अब के और भी अधिक बल से ऊपर की तरफ़ उछाला। इस पत्थर की चोट से कुछ जामुनें भी गिरीं या नहीं, यह तो नहीं मालूम, परन्तु वायुमण्डल में एक साथ सैकड़ों

शहद की मक्खियाँ ज़रूर व्याप्त हो गईं। सुक्खी का अभागा पत्थर मधु-मक्खियों के छत्ते पर जा लगा था। सुक्खी यह देख कर घबरा गई। वह भागी, परन्तु फिर भी एक मक्खी उसके नंगे कंधे पर आकर काट ही गई। इधर गौओं में हलचल पड़ गई थी। मधु-मक्खियों ने गौओं पर आक्रमण किया था, इसलिए वे भी उठ-उठ कर भागने लगीं। यह देख कर एक लड़का दौड़ा हुआ इस तरफ़ आया। डर कर भागी जा रही सुक्खी और अपनी गौओं पर नज़र पड़ते ही उसे सारी घटना समझ आ गई। उसने दौड़ कर सुक्खी को पकड़ लिया। मक्खी काट खाने के दर्द से बेचारी सुक्खी पहले ही तिलमिला रही थी, उस पर क्रोध में भरे हुए चरवाहे ने दो-तीन थप्पड़ और रसीद कर दिए। सुक्खी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

चरवाहा उसे पकड़ कर पुनः जामुनों के तले ले आया। इस समय तक मक्खियों का उपद्रव लगभग शान्त हो चुका था। चरवाहा जानता था कि सुक्खी प्रतिदिन इसी जंगल में लकड़ियाँ जमा करने का काम करती है। जामुनों के नीचे पहुँच कर लकड़ियों के गट्ठर पर भी उसकी निगाह पड़ी। उसका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उसने वह गट्ठर उठाया और उसे ज़ोर से नदी के उथले पानी में फेंक दिया।

बेचारी सुक्खी पर इससे बड़ा अत्याचार और नहीं हो सकता था। इस चरवाहे ने न केवल उसके आधे दिन की मेहनत ही बेकार कर दी, अपितु उसकी रस्सी भी पानी में बहा दी। वह अभागी चिल्ला-चिल्ला कर ज़मीन-आसमान एक करने लगी। उसकी आँखों से आँसुओं का सोता बह चला। कितने उल्लास से वह बेचारी जामुनें तोड़ने आई थी। यहाँ आकर पहले तो उसे मक्खी ने काटा, उसके बाद चरवाहे से मार पड़ी और अब उसकी कीमती रस्सी तक भी पानी में बहा दी गई। वह बेचारी ज़मीन पर लोट-लोट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

एक मिनट तक तो वह चरवाहा इस छोटी-सी, अभागिनी लड़की का यह करुण क्रन्दन चुपचाप खड़े रहकर सुनता रहा। परन्तु इसके बाद उसका जी पसीज गया। सुक्खी से एक भी शब्द बोले बिना वह पानी में कूद

गया और उसका वह गट्ठर खींच कर बाहर ले आया। सुक्खी इस समय तक उसी तरह रो रही थी कि चरवाहा उसके पास आया और गट्ठर उसके सामने रख कर बोला--"अब बता, फिर कभी ऐसी शरारत करेगी ?"

लड़के ने यह बात कही तो धमकी के ढंग पर थी, मगर अब उसके स्वर में तीव्रता ज़रा भी नहीं रही थी। सुक्खी ने उसकी इस धमकी का कोई जवाब नहीं दिया। केवल उसके आँसुओं का प्रवाह और भी अधिक तेज हो गया।

चरवाहा अब सुक्खी के एकदम निकट चला आया। उसने सुक्खी के कन्धे पर हाथ रख कर, अब भी डाँटते हुए से स्वर मे कहा--"नालायक कहीं की ! रोती जाती है और बोलती नहीं। देख, तेरा कन्धा सूज आया है। तुझे भी मक्खी ने काटा है न ? और कर शरारतें। चल, इस पर गीली मिट्टी लगा ले।"

सुक्खी ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया, और न वह अपने स्थान से हिली ही। उसकी रोने की आवाज तो अब धीमी पड़ गई थी, मगर रुदन की द्रावकता अब पहले की अपेक्षा भी बढ़ गई थी।

चरवाहा एक मिनट तक चुपचाप खड़ा रहा, और इसके बाद वह नदी के किनारे से गीली-गीली चिकनी मिट्टी उठा लाया। सुक्खी के कन्धे पर उसने इसका लेप कर दिया। बालिका के जलते हुए अंग को गीली मिट्टी के स्पर्श से बड़ी शीतलता पहुँची।

तब वह चरवाहा उसे अपने साथ ले गया और अपनी टोली में पहुँच कर उसने नमक मिले काले-काले जामुनों से भरा एक बड़ा-सा दोना इस दरिद्र-सी, हतबुद्धि हो रही व्यथित बालिका के हाथों में पकड़ा दिया और कहा--"बस, अब भाग जाओ !"

सुक्खी की उदास-सी आँखें चमक आईं और एक बार कृतज्ञताभरी और बिलकुल निष्पाप दृष्टि से उस हट्टे-कट्टे और तन्दुरुस्त चरवाहे की ओर देख कर वह वहाँ से चली गई।

इस मामूली-सी घटना ने सुक्खी के दिल में प्रेम का वह पौदा उत्पन्न कर दिया, जो मनुष्य के हृदय की सब से अधिक शानदार उपज है।

उस दिन के बाद से जब वह उस चरवाहे को देखती, उसका दिल खुशी से नाचने लगता। चरवाहा भी उससे बड़ी प्रसन्नता के साथ मिलता था। सम्भवतः वह भी उससे स्नेह करने लगा था। परन्तु पुरुष और स्त्री के स्नेह में स्वभावतः बहुत अन्तर होता है।

अनेक दिन इसी तरह निकल गए।

:o: :o: :o:

उधर सुक्खी के जीजा जी के दिल में एक नई इच्छा उत्पन्न हुई। उस धोबी का एक छोटा भाई भी था। उसकी उम्र अभी सोलह-सत्रह बरस ही थी। परन्तु धोबी को मालूम था कि विवाह के सम्बन्ध में उसकी किस्मत उसकी अपनी किस्मत की अपेक्षा अधिक अनुकूल सिद्ध नहीं होगी। अपने अनुभव के आधार पर, अट्ठाईस बरस की उम्र तक कुंआरा रहने की दिक्कतों से अपने भाई को बचाने के लिए उसने निश्चय कर लिया कि वह सुक्खी का विवाह अपने नाबालिग भाई से ही कर देने का प्रयत्न करेगा। साथ ही घर में एक महिला सदस्य के और बढ़ जाने से धोबी को अपने काम-काज में स्वभावतः अधिक सहूलियत हो जाएगी। सुक्खी इस घर में आ जाए, तो कम से कम इस्त्री मे कोयला भरने, चिलम में तम्बाकू डालने और सूखते हुए कपड़ों की हिफ़ाज़त आदि का काम तो वह कर ही सकेगी। इसलिए एक रात, सोने से पूर्व खूब घुमा-फिरा कर उसने अपनी पत्नी के सामने यह प्रस्ताव पेश किया।

परन्तु उसकी पत्नी को इस घर में जो अनुभव प्राप्त हुआ था, उसकी बदौलत अपनी बहन को भी यहाँ ही खपा लेने की चर्चा में उसने कोई उत्साह नहीं अनुभव किया। तथापि अपने पति के भय से वह इन्कार भी नहीं कर सकी। यह मामला, बाद के लिए मुल्तवी कर दिया गया।

शीघ्र ही यह प्रस्ताव सुक्खी की माँ के सामने भी आया। सुक्खी की माँ को अपनी बड़ी लड़की के दिल की बात मालूम थी, इसलिए अपनी दूसरी लड़की को वह उसी घर में नहीं देना चाहती थी। फिर, सुक्खी के चले जाने से वह रह भी तो बिलकुल अकेली ही जाती। और अभी तो सुक्खी

बहुत छोटी है। बार-बार ज़ोर पड़ने पर इस सम्बन्ध में उसने सुक्खी की राय जाननी चाही। अपने जीजा से सुक्खी ने ज्यों ही इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में सुना, वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। सुक्खी को रोता देख उसकी माता इतना अवश्य समझ गई कि सुक्खी इस प्रस्ताव के लिए राजी नहीं है।

परन्तु कम्बख़्त धोबी इतना कच्चा नहीं था। वह अपने मुकाबले में इस अनाथ परिवार की कुछ भी हस्ती नहीं समझता था। वह उस वक्त तो चुप रह गया, मगर अन्दर-ही-अन्दर अपने इस विचार को चरितार्थ कर लेने का उसने पक्का निश्चय कर लिया।

उसके बाद करीब एक मास तक धोबी इस सम्बन्ध में दम साधे रहा। दोनों पक्षों के लोग धीरे-धीरे उस सम्बन्ध मे सभी कुछ भूल गए। लगभग एक महीना बाद एक सुहावनी बदली वाले दिन वह धोबी दूध की-सी धुली पोशाक पहन कर अपनी ससुराल में आ उपस्थित हुआ। उसकी सास ने ठण्डेपन से उसका स्वागत किया। परन्तु दामाद ने जैसे इस शिथिल सत्कार की ओर ध्यान ही नहीं दिया। दो-एक दिन ससुराल ठहर कर उसने प्रस्ताव किया कि क्यों न सुक्खी की माँ भी अपनी दोनों सन्तानों के साथ कुछ दिनों के लिए उसी के घर जा कर रहने लगे?

बरसात शुरू हो चुकी थी। जमुना नदी इन दिनों किनारों तक भर कर बहा करती थी। जंगल में घास-फूस इस बहुतायत से उग आया था कि उसमें प्रवेश करना भी अब कठिन हो गया था। इस मछिहारा परिवार की झोंपड़ी और कस्बे के बीच में जो छोटे-छोटे नाले रहते थे, वे इन दिनों प्रायः विकराल रूप धारण कर लिया करते थे। इन नालों के अनिश्चित प्रवाह की बदौलत मछलियों की फ़रोख़्त का धन्धा इस मौसम में और भी कम लाभकर हो गया था। यही सब बाधाएँ देख कर सुक्खी की माँ अपनी लड़की के घर जाकर कुछ दिन काट लेने के लिए तैयार हो गई।

सुक्खी जब अपनी जीजी के घर जाने लगी, तो उसके हृदय को पहली बार विरहजन्य वेदना का गम्भीर अनुभव हुआ। बरसात के कारण यद्यपि

वह नौजवान चरवाहा अब इस ओर अपने पशुओं को चराने के लिए प्रति-दिन नहीं आया करता था, तथापि उसका इधर आना-जाना अब भी बना ही हुआ था। बरसात के इन सुहावने दिनों में यह चरवाहा-मण्डली बाँसुरी का अनुपम उपयोग किया करती थी। वंशी तो ग्वालों को विरासत में मिली है न! भोगपुर गाँव के ये चरवाहे भी वंशी बजाने में बड़े निपुण थे। वह नौजवान चरवाहा इस दल का मुखिया था। जमुना के किनारे घने-घने जामुनों की वह लम्बी पंक्ति हरी-हरी जीवित दीवार के समान खड़ी थी। उन वृक्षों के साथ एक छोटा-सा समतल मैदान था, जो इस मौसम में हरी-हरी घास से मढ़-सा गया था। इन चरवाहों की टोली इसी मैदान में बैठ कर बाँसुरी बजाया करती थी। आसमान में बादल छाये होते थे। जामुनों के दूसरी तरफ़, जमुना नदी के जल की मटियाली-सी विस्तृत सतह लहरें लेकर फिसल रही होती थी। विस्तीर्ण नभ के किसी भाग में बिजली चमकती, उसके अगले ही क्षण गम्भीर ध्वनि से बादल गरज उठता। उसके बाद मानो क्षण भर के लिए विश्वभर सन्नाटा थाम लेता। परन्तु शीघ्र ही जंगल के मोर यह सन्नाटा तोड़ डालते। वे मिल कर बादलों के चेलेंज का जवाब देते, मानो वे कहते हों——"हाँ, कहीं इस पृथ्वी को वीर-विहीन मत समझ लेना! हम भी यहाँ रहते हैं।" इसके बाद कोयल कुहुकती, और अगले ही क्षण वह सम्पूर्ण श्यामल वन गीदड़ों की चिल्लाहटों से जैसे रोने लगता। इधर चरवाहों की यह महफिल बांसुरी बजाना शुरू करती——कभी एक-एक करके और कभी सब एकसाथ मिल कर। विचित्र समा बँध जाता, और दूर पर, किसी झाड़ी या गाय-भैंस की ओट में बैठी हुई सुक्खी वंशी की इस तान को, आँखों में आनन्द के आँसू भर चुपचाप सुना करती। उसका असंस्कृत, अपरिपक्व और कोमल हृदय वंशी के राग के साथ-ही-साथ गति करने लगता था। अन्त में उससे रहा न जाता और वह व्याकुल होकर धीरे-धीरे चरवाहों की उस टोली की तरफ़ चल देती। उसे आता देख कर उस नवयुवक चरवाहे की वंशी में उत्साह की बाढ़-सी आ जाती और उसका राग बहुत अधिक स्फूर्तिमान हो उठता।

मगर अब लाचार होकर सुक्खी को अपने जीजा के घर के लिए रवाना होना ही पड़ा। अपनी बहन के घर पहुँच कर वह बहुत अधिक उदास रहने लगी। उसकी माता का ख्याल था कि इस उदासी का कारण केवल उसके हृदय का यह भय है कि कहीं वह धोबी उसका विवाह अपने भाई से कर देने का प्रस्ताव फिर से न उठा दे। सुक्खी की माँ ने निश्चय कर लिया था कि वह इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार नहीं करेगी।

सुक्खी को अपनी बहन के घर आए कई दिन बीत गए। उसकी बहन उसे प्रसन्न रखने का बड़ा प्रयत्न करती थी। वह उसकी उदासी का कारण भी जानना चाहती थी। प्रायः लड़कियाँ आपस मे, अपनी समवयस्क बहनों या घनिष्ठ सखियों के सामने, अपने दिल की बात नहीं छिपातीं। परन्तु सुक्खी की तबीयत कुछ और ही ढंग की थी। वह बहुत ही अवगुण्ठित और शर्मीले स्वभाव की लड़की थी। उसने अपनी बहन के सामने भी अपने जी की बात कभी नहीं खोली।

एक दिन की बात है, सुक्खी साँझ के समय अपनी बहन के साथ घाट पर बैठी थी। पास ही, मैदान की घास पर दिनभर के धोये हुए कपड़े सूख रहे थे। सुक्खी के जीजा का यह घाट एक नाले के किनारे था। आज दिनभर आसमान में बादल रहे थे। थोड़ी बहुत बूँदाबाँदी भी होती रही थी, परन्तु इस वक्त आसमान साफ़ हो चुका था और तेज धूप निकल आई थी। घाट पर इन दोनों बहनों को छोड़ कर और कोई नहीं था। इसी समय दूर से आवाज़ आई–"सुक्खी! अपनी जीजी के साथ ज़रा इधर तो आना!"

सुक्खी ने चौंक कर देखा, उसके जीजा जी उसे बुला रहे थे। उनके साथ उनका छोटा भाई भी था। सुक्खी घबरा गई। उसने अपनी बहन की तरफ़ देखा। उसकी बहन उसके मन की बात ताड़ गई। उसने मुस्करा कर कहा––"इतना क्यों घबराती हो, वे तुम्हें खा तो नहीं जाएँगे। उस बात से तुम निश्चिन्त रहो, मैं वह कभी न होने दूँगी। चलो, देखें वे क्या कहते हैं।"

मगर सुक्खी की घबराहट अब भी दूर नहीं हुई। तो भी वह उठी और अपनी जीजी के साथ उस तरफ़ को चली। धोबी बहुत ही गम्भीर भाव से चुपचाप खड़ा था।

ज्यों ही ये दोनों बहनें धोबी के निकट पहुँचीं, त्यों ही उसने सुक्खी को पकड़ कर जबर्दस्ती उसका आँचल अपने भाई के कुरते के साथ बाँध दिया। इसके बाद दियासलाई निकाल कर बिजली की तेजी से उसने पास की सरकण्डों की झाड़ी को आग लगा दी। झाड़ी की आधी सूखी आधी गीली पत्तियाँ खूब धुआँ छोड़ती हुई सुलग उठीं। धोबी की पत्नी को चौंकने और विरोध करने का अवसर भी न मिला और वह धोबी सुक्खी और अपने भाई को जबरदस्ती बाँध उस जलती झाड़ी के चारों ओर फेरे देने लगा। उस धूम्रमय अग्नि की पृष्ठभूमि में वह एक ऐसे दैत्य के समान प्रतीत हो रहा था, जो दो बच्चों को एक साथ उड़ाए लिए जा रहा हो। सुक्खी ने रो-रोकर जमीन-आसमान को एक करना शुरू कर दिया। वह उछल-उछल कर पूरे बल के साथ अपने को धोबी के फौलादी पंजों से छुड़ाने का प्रयत्न कर रही थी, परन्तु उसके इन सब निर्बल प्रयत्नों को विफल कर धोबी ने उन दोनों को इस झाड़ी के चारों ओर तीन चक्कर लगवा ही दिए। इसके बाद उसने उन्हें छोड़ दिया। इस बीच में सुक्खी की बहन बहुत उत्तेजित होकर अपने देवर को बुरी तरह पीटने भी लग गई थी, इसलिए अब वह भी रो रहा था। सुक्खी तो रो ही रही थी। उसकी बहन भी रो रही थी। इस तरह इस पिशाच-विवाह की बरात के चारों जनों में उस नरपशु धोबी को छोड़ कर बाकी तीनों जने रो रहे थे। सुक्खी अपने को छुड़वाने का जो हताश प्रयत्न करती रही थी, उसकी बदौलत उसका शरीर जगह-जगह से छिल गया था। यही हाल दूल्हा साहब का भी हुआ था। वर और वधू दोनों के अनेक अंगों से खून बहने लगा था।

यह सब शोरगुल सुनकर सुक्खी की माँ और उसका भाई भी दौड़े हुए उस जगह पहुँचे। उन तीनों का रोना अभी तक जारी था। सुक्खी की माँ ने बहुत अधिक घबराकर धोबी से पूछा--"क्यों, क्या बात है?"

उसने हँसकर जवाब दिया--"कुछ नहीं। सुक्खी और बारू का विवाह हो गया है!"

सुक्खी की माता के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा--"यह कैसे हो सकता है।"

धोबी ने बड़े साधारण स्वर में मुस्करा कर कहा--"कैसे हो सकता है? मैंने इन दोनों का आँचल बाँध कर इस आग के चारों ओर इन्हें तीन फेरे दे दिए हैं। अब मैं देखूँगा कि कौन यह कह सकता है कि बारू और सुक्खी का विवाह नहीं हुआ!"

सुक्खी की माँ ने क्रोध मे भरकर काँपते हुए स्वर मे कहा--"मैं यह विवाह हरगिज़ नहीं मानूँगी। मैं सुक्खी का विवाह कहीं और करूँगी। तुम बेशक अदालत की मदद ले आओ। मै उसकी परवाह नहीं करूँगी।"

धोबी ने बड़ी उपेक्षा के साथ जवाब दिया--"ऊँह! अदालत में जाने की ज़रूरत ही क्या है? हिन्दू लड़की का विवाह एक ही बार होता है। सुक्खी अब धरम से बारू की घरवाली बन चुकी। अब देखता हूँ, कौन हिन्दू तेरी इस लड़की के साथ विवाह करने को तैयार होता है!"

सुक्खी की माँ ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह उसी समय सुक्खी और उसके भाई के साथ अपने घर की तरफ़ रवाना हो गई।

:o: :o: :o:

सुक्खी इस घटना से इतना अधिक डर गई थी कि घर पहुँच कर भी उसकी घबराहट दूर न हुई। उसे हर समय यही अनुभव होता था कि मानो अभी धोबी आएगा और मुझे अपने साथ पकड़ ले जाएगा। रात को, पहले तो बहुत देर तक उसे धोबी के डर से नींद ही न आ पाती, और जब नींद आती भी, तो उसमें वह उसी धोबी के सपने देखती रहती थी। कभी-कभी वह भय से चौंक कर उठ बैठती। उस कम्बख़्त धोबी ने इस अपरिपक्व बालिका के कोमल हृदय को इतनी बुरी तरह डरा दिया था कि वह बेचारी दो-तीन दिनों में ही बहुत कमज़ोर हो गई। वह धोबी को इतना शक्तिशाली समझती थी कि उसके चंगुल से बचना उसे अपने लिए असम्भव प्रतीत

होता था।

इस दशा में तीन दिन और चार रातें निकल गईं। भाग्य के फेर से इन दिनों वह चरवाहा भी इस ओर कभी न आया। चौथे दिन सुक्खी के जी में एक विचार आया। वह यहाँ से भाग क्यों न जाए? उसके दिल में यह विचार आया और बिना अधिक सोच-विचार किए, उसने वहाँ से भाग जाने का निश्चय कर लिया। धोबी से बचने के लिए वह बेचारी अब सभी कुछ करने को तैयार थी।

उसकी कुटिया से एक मील दूर, पानी के प्रवाह की तरफ़, एक घाट था। सुक्खी अपनी माँ से कुछ भी कहे बिना उसी तरफ़ को निकल गई। उसके आँचल में पाँच आने के पैसे बँधे हुए थे। यही उसकी कुल जमा पूँजी थी। दो पैसे देकर सुक्खी भी नाव पर सवार हो गई।

पाँच-सात दिनों में करीब साठ मील का सफ़र कर वह बेचारी एक छावनी में जा पहुँची। किस्मत से वह किसी अंग्रेज फौज़ी अफसर के घर के सामने जा निकली। उस अफ़सर की पत्नी ने उसे अपने पास बुलाया और काम-काज के सम्बन्ध मे कुछ इधर-उधर के सवाल कर उसे अपने पास नौकर रख लिया।

अभागिनी सुक्खी को एक अच्छा आश्रय मिल गया।

चार साल निकल गए। सुक्खी को न अपने घरवालों का कोई समाचार मिला और न उन्हें सुक्खी का। सुक्खी अब पूर्ण युवावस्था में पहुँच गई। साहब के यहाँ काफ़ी अच्छा खाते-पीते रहने से उसका शरीर भर आया था और रूप निखर गया था। सत्रह बरस की युवती देखने में भद्दी या अरुचिकर प्रतीत हो--यह बात अपवाद स्वरूप ही होती है। सुक्खी उन अपवादों में नहीं थी। वह साहब की नौकरी में थी। मेम की उस पर कृपादृष्टि थी। इसलिए उसके पास विवाह के बीसों पैगाम आए। मगर उसने उनमें से किसी को भी स्वीकार नहीं किया। उस तरुण चरवाहे की याद वह अभी तक नहीं भूली थी। उसके हृदय में एक बार जो मूर्ति घर कर गई थी, उसे वहाँ से हटाने को वह कभी किसी कीमत पर

तैयार नहीं थी। छावनी के अनेक खानसामों ने उसे पत्नी रूप मे लेने की इच्छा प्रकट की, उसकी मालकिन ने भी अनेक बार उसे इस बात के लिए प्रेरित किया, परन्तु वह तैयार नहीं हुई। विवाह से अपनी तीव्र विरक्ति का कारण भी उसने किसी पर प्रकट नहीं किया।

साहब के यहाँ प्रतिदिन छावनी की सरकारी दुग्धशाला से दूध आता था। इसे अपने निरीक्षण मे लेने का काम सुक्खी के सपुर्द था। सरदियों का मौसम था। रात को काम की अधिकता के कारण सुक्खी ज़रा देर मे सोई थी, इससे प्रातःकाल ठीक समय पर उसकी नींद नहीं टूटी। दुग्धशाला से दूधवाला आया और कोठी के बाहर किसी को मौजूद न पाकर उसने बरामदे के निकट जाकर आवाज दी--"दूध ले जाओ।"

अन्दर से एक बूढ़ी मेम बाहर निकली और उसने डाँट कर कहा--"दूध के लिए यहाँ आकर क्यों चिल्लाते हो! जाओ, उधर रसोई घर की तरफ़!"

साथ-ही-साथ उस मेम ने आवाज़ दी--"सुक्खी! ओ सुक्खी!"

सहन के दाहिनी ओर, रसोई घर के साथ ही सुक्खी का कमरा था। वह शीघ्रता से आँखें मलती हुई बाहर आ खड़ी हुई।

मेम ने कहा--"अभी तक सो रही थी? देखो, दूध वाले से कह दो, वह इधर आकर शोर न मचाया करे।"

सुक्खी यह बात सुनकर कुछ हैरान हुई। उसे आश्चर्य हुआ कि रोज की तरह दूधवाला इधर न आकर बरामदे की तरफ़ क्यों चला गया। मेम भीतर चली गई थी। सुक्खी ने दूधवाले की तरफ़ देखा। वह नया आदमी था।

सरदियों के उस प्रभात में पृथ्वी का आंगन हल्के-हल्के कुहरे से व्याप्त था, इस कारण सुक्खी इस आदमी को अच्छी तरह देख नहीं पाई थी। तो भी वह चौंकी। थोड़ी देर मे वह दूधवाला उसके निकट आ गया, और बोला--"मेम साहब, दूध ले लो!"

सुक्खी अब अच्छी तरह पहचान गई। ओह, यह तो वही चरवाहा है! अब यह पहले की अपेक्षा कितना बड़ा, परिपक्व, पतला और गम्भीर

हो गया है। सुक्खी का दिल धड़कने लगा। तो भी उसने आवाज़ देकर एक नौकर को बरतन लाने को कहा।

मालूम होता है, वह चरवाहा अभी तक सुक्खी को पहचान नहीं पाया था। इस अर्से में सुक्खी रूपलावण्यमयी एक स्वस्थ युवती बन गई थी। उसके कपड़े भी साफ़-सुथरे थे। सफेद और स्वच्छ हाथ-पाँव, बढ़िया जूड़ा और रौबदार वाली उस युवती को युवक चारवाहे ने बड़े आदर के भाव से देखा।

सुक्खी उसकी मुखमुद्रा से पहचान गई कि वह अब उसका नहीं रहा। उसने विवाह कर लिया है।

उस वक्त तो उन दोनों मे कोई बातचीत नहीं हुई, मगर साँझ को ही सुक्खी ने उस चरवाहे को अपना परिचय दे दिया और पूर्ण संयत रूप से दोनों की मित्रता फिर से पल्लवित हो गई। अभी पन्द्रह दिन से ही वह चरवाहा इस छावनी की दुग्धशाला में नौकर हुआ था और अपनी पत्नी के साथ दुग्धशाला के समीप की एक फूँस की झोंपड़ी मे रहता था।

सुक्खी ने यह सब देखा, सुना और अनुभव किया। मगर उसके दिल मे इस चरवाहे के प्रति शिकायत का कोई हल्का-सा भाव तक भी उत्पन्न नहीं हुआ।

धीरे-धीरे सुक्खी उस चरवाहे के घर भी आने-जाने लगी। चरवाहे की पत्नी को वह अपनी भाभी कहती थी। चरवाहे का एक छोटा-सा पुत्र भी था। उसकी उम्र अभी बारह-तेरह महीनों की ही थी। सुक्खी इस बच्चे से असीम प्यार करती थी। यहाँ तक कि वह अनेक बार उसे अपने साथ ले जाती और कितने ही दिनों तक निरन्तर अपने पास रखती।

छावनी के अन्य नौकर-चाकरों तथा खानसामों ने यह सब देखा। वे सुक्खी पर ताने कसने लगे और उस चरवाहे के भाग्यों से ईर्ष्या करने लगे। परन्तु सुक्खी का अन्तःकरण कितना उच्च और कितना पवित्र था, यह तो वह सर्वान्तर्यामी ही जानता है।

दुर्भाग्य से तीन बरस बाद ही एक लारी के नीचे दब कर उस चरवाहे

का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु पर चरवाहे की पत्नी भी रोई और सुक्खी भी रोई। मगर उन दोनों के रोने मे अन्तर था। चरवाहे की पत्नी कुछ ही दिनों के बाद अपने बच्चे को सुक्खी के पास छोड़ कर अपने भै चली गई और पाँच-छः मास बाद उसका दूसरा विवाह हो गया।

:o: :o: :o:

इधर सुक्खी को बरसों तक किसी ने हँसते हुए नहीं देखा। अपनी भा किन का काम अब भी वह अच्छी तरह करती थी, मगर उसका दिल सदे मुरझाया रहता था। चरवाहे के उस नन्हे-से पुत्र को उस पना पुत्र बना लिया था। वह उससे इतना स्नेह करती थी, जितना क.. माँ भी अप बच्चे से भी न करेगी।

इस बच्चे के पालन-पोषण में उसने अपना सर्वस्व लगा दिया। अपनी सम्पूर्ण तनख्वाह वह इसी बच्चे पर खर्च कर देती थी।

इस बच्चे को उसने पढ़ाया, लिखाया और अन्त में अपने साहब की मदद से सेना में ही एक बहुत अच्छी नौकरी भी दिलवा दी।

चरवाहे का वह लड़का अब इक्कीस साल का नवयुवक है। उसकी माता झाँसी जा रही है, और वह उसे स्टेशन पर विदा देने आया है। वह देखो, गाड़ी सीटियाँ दे रही है--

:o: :o: :o:

सहसा मेरी नींद टूट गई। मैंने देखा, गाड़ी सचमुच सीटियाँ दे र ी है; कमरे में और कोई यात्री नहीं है, और एक महाशय मुझे आवाज़ देक कह रहे हैं--"कब तक सोयेंगे जनाब ! अगला स्टेशन दिल्ली है।"

और वर्षा अब भी जारी थी।